(जुलाई-सितंबर, 2015)
अंक - 2

अनुसृजन

(अनुवाद अध्ययन विभाग की त्रैमासिक द्विभाषी ई-पत्रिका)

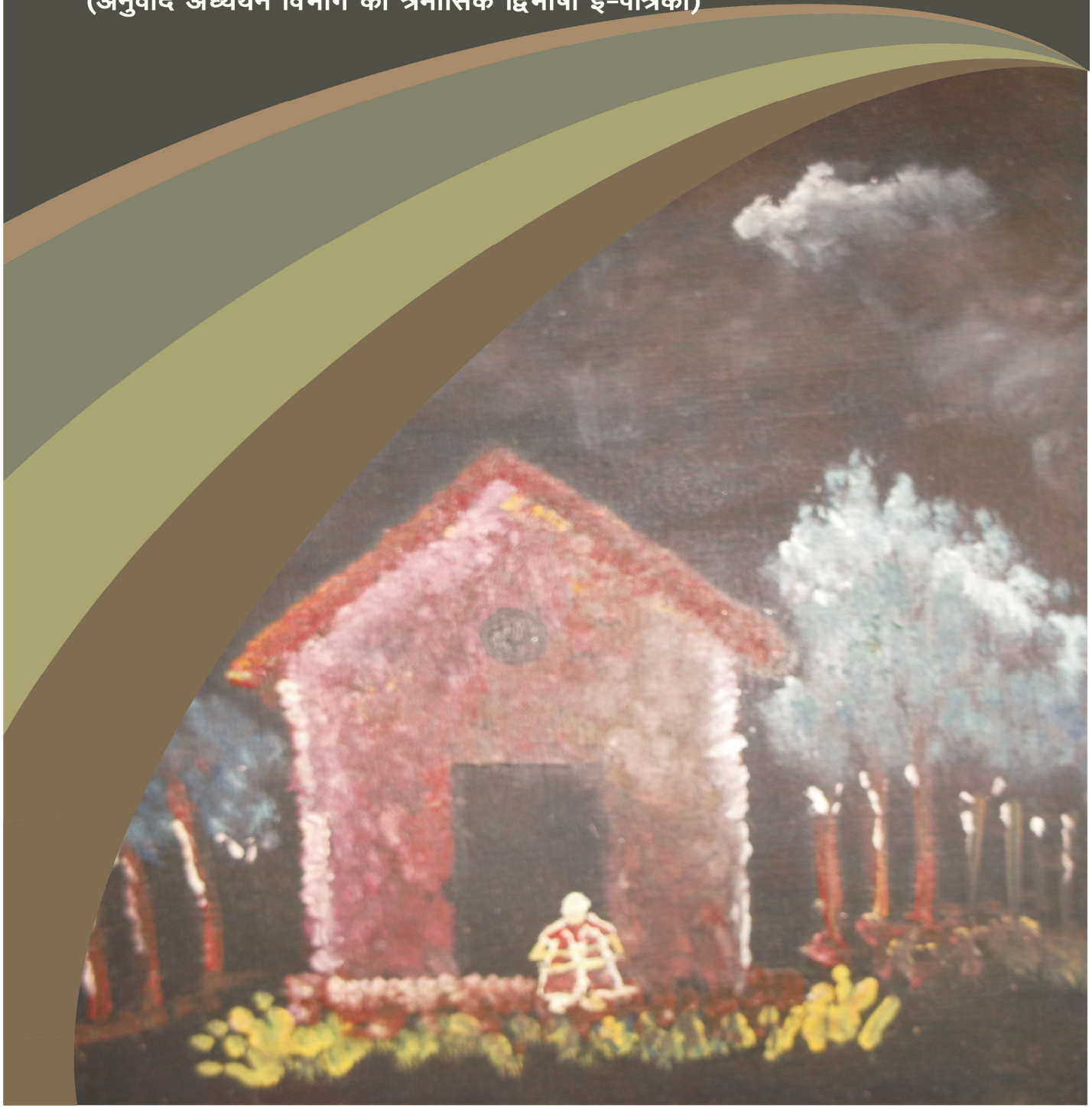

अनुसृजन

अनुवाद अध्ययन विभाग की त्रैमासिक द्विभाषी ई-पत्रिका
अंक – 2 : जुलाई-सितंबर, 2015

संरक्षक
प्रो. गिरीश्वर मिश्र, कुलपति

मार्गदर्शक
प्रो. चित्तरंजन मिश्र, समकुलपति
प्रो. देवराज

परामर्शदाता
डॉ. अनवर अहमद सिद्दीकी

संपादक
डॉ. हरप्रीत कौर

सह-संपादक
डॉ. मिलिंद पाटिल, सुधीर जिंदे
संपादन सहयोग
अनुपमा पाण्डेय

रेखांकन
राजेश आगरकर

मुखपृष्ठ
मेघा आचार्य

प्रकाशक : अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

- प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल/प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं।
- न्याय क्षेत्र : वर्धा

E-Mail – aanusrujan@gmail.com,

अनुक्रमणिका

1. अनुवाद और भाषाविज्ञान -डॉ बी बालाजी

2. अनुवाद की चुनौतियाँ - डॉ. ई. विजय लक्ष्मी

3. मणिपुरी का संस्कृत, हिंदी और अन्य भाषाओं से संवाद – प्रो. देवराज

4. भाष्य (आलोक धन्वा : ब्रूनो की बेटियां) – कुमार मुकुल

5. अनुवाद और निर्वचन का संबंध – अनुराधा पाण्डेय

6. प्राकृतिक भाषा संसाधन में बहुशब्दीय अभिव्यक्तियों के अनुवाद की समस्याएं – विशेष श्रीवास्तव

7. Semantic Componential Analysis Approach for Hindi-English Translation - Yogesh Umale

8. वऱ्हाडी बोली में आगत हिंदी शब्दों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन- विद्या चंदनखेड़े

9. हैमलेट के अनुवाद की समीक्षा - शावेज़ ख़ान

10. बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का रचना-कर्म - अमरेन्द्र त्रिपाठी

11. उत्तर आधुनिकता के दर्पण में 'मनोहर श्याम जोशी' के उपन्यास - एक विहंगावलोकन - डॉ. वी.जगन्नाध रेड्डी

अनुवाद

12. अनुवाद- तब, स्त्री, खून के बुत– वाहरु सोनवने की मराठी कविताएँ – अनुवादक – मिलिंद पाटिल

13. अनुवाद - दो रास्ते – नामदेव ढ़साल की मराठी कविताएँ – अनुवादक – मिलिंद पाटिल

14. अनुवाद- पंजाबी की चुनिंदा प्रेम कविताओं का हिंदी अनुवाद **-** अनुवादक – हरप्रीत कौर

संपादकीय

अनुवाद संबंधी हिंदी में उपलब्ध तमाम पुस्तकें सिर्फ अनुवाद संबंधी सिद्धांत की रूपरेखा जानने के लिए सहायक भर हैं, जबकि अनुवाद के क्षेत्र में अभी व्यापक रचनात्मक लेखन की अनिवार्यता है। ऐसे में अकादमिक खानापूर्ति की दृष्टि से लेखकों की दौड़ केवल मशीनी अनुवाद और भाषा प्रौद्योगिकी पर जाकर टिक गई है। ज्यादातर पुस्तकों के नए संस्करण में लेखकों ने मशीनी अनुवाद संबंधी नया अध्याय भी जोड़ना शुरू कर दिया है। ऐसी पुस्तकें विद्यार्थी की सोच को एक तरफ मोड़ती हुई उसकी रचनात्मक संभावना को ख़त्म करती चलती हैं। जिससे यह पता चलता है कि अनुवाद सैधान्तिकी और वैचारिकी के विषय में अभी भी हम रचनात्मक पिछड़ेपन के शिकार हैं। किसी भी विषय में अकादमिक अरूचि और गांभीर्य की कमी उसे लगातार नीरसता की तरफ ठेलती है। और यह संभावना अनुवाद के साथ लगातार दिखाई देती है।

ऐसे में अनुवाद आधारित किसी शोध पत्रिका को लगातार रचनात्मक बनाए रखना चुनौती पूर्ण कार्य होगा जबकि शोधार्थीयों के द्वारा प्रयुक्त पुस्तकें पूरी तरह तकनीकी और एक सरीखे ज्ञान से भरी पड़ी हैं। फिर भी आगामी अंकों में हमारी योजना है कि हम इसे उस जटिलता और तुकबन्दी ज्ञान से दूर रखेंगे जिसमें नवीनता और अनोखेपन की असंभावना है। जहाँ एक तरफ साहित्य जगत और अन्य विभिन्न ज्ञानानुशासनों में अनुवाद की उपयोगिता और महत्व को (वैश्विक अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में) नकारा नहीं जा सकता। वहीं दूसरी तरफ अकादमिक जगत उसे लगातार अरुचिकर दिशा में ठेलता नजर आता है। खैर, तमाम विरोधावासों और अपेक्षाओं के साथ हम इसी अनुवाद जगत में संभावित शोध संकल्पनाओं को निरंतर तलाशते और सहेजते रहेंगे। इस पत्रिका में भाष्य टीकाएँ और अनुवाद भी शामिल किये जायेंगे। लेखकों से आग्रह है कि अनुवाद के साथ लेखक का सहमति पत्र अवश्य संलग्न करें।

डॉ. हरप्रीत कौर

अनुवाद और भाषाविज्ञान

डॉ. बी. बालाजी

अनुवाद : अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

क) भूमिका

आधुनिक युग के जिस चरण में हम आज हैं, उसे वैश्विकरण का युग, सूचना प्रौद्योगिकी का युग, उत्तर आधुनिक युग आदि कहा जा रहा है। इन विविध नामों की सार्थकता अनुवाद के बिना सिद्ध नहीं हो सकती। अतः इसी क्रम में यदि इस युग को अनुवाद का युग कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। विश्व भर में फैले अपार ज्ञान संपदा का प्रचार-प्रसार करने में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय दर्शन, गणित, चिकित्सा आदि शास्त्रों का ज्ञान विश्व के अनेक देशों में विशेषकर पश्चिमी देशों में तथा वहाँ पर हुए आधुनिक आविष्कारों की जानकारी भारतीयों को होना अनुवाद के कारण ही संभव हो पाया है।

ख) अनुवाद : अर्थ

'अनुवाद' मूलतः संस्कृत का शब्द है। यह दो शब्दों के योग से बना है – अनु+वाद। संस्कृत की 'वद' धातु में 'घञ' प्रत्यय के जुड़ने से धातु के पहले अक्षर में 'आ' की मात्रा ' T' जुड़ जाती है और 'वाद' शब्द बन जाता है। इसका अर्थ है कहना या बोलना। 'वाद' में 'अनु' उपसर्ग के लगने से 'अनुवाद' शब्द बना। 'अनु' का अर्थ है पुनः, बाद में, पीछे इत्यदि। अतः अनुवाद का व्युत्पति जनित अर्थ हुआ पुनः कहना, बाद में कहना, पीछे कहना आदि।

ग) अनुवाद की परिभाषा एवं स्वरूप

अ) अनुवाद संबंधी विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएँ

i) भारतीय विद्वान

1) भोलानाथ तिवारी - भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन है।
2) स.ही. वात्स्यायन – समस्त अभिव्यक्ति अनुवाद है क्योंकि वह अव्यक्त (या अदृश्य आदि) को भाषा (या रेखा या रंग) में प्रस्तुत

करती है।

3) पटनायक - अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सार्थक अनुभव को एक भाषा समुदाय में संप्रेषित किया जाता है।

4) डॉ. सुरेश कुमार – भाषा भेद के विशिष्ट पाठ को दूसरी भाषा में इस प्रकार प्रस्तुत करना अनुवाद है जिसमें वह मूल के भाषिक अर्थ, प्रयोग के वैशिष्ट्य को यथासंभव संरक्षित करते हुए दूसरी भाषा के पाठक को स्वाभाविक रूप से ग्राह्य प्रतीत हो.

5) प्रो.रवींद्रनाथ श्रीवास्तव – अनुवाद को दो संदर्भों में देखा जा सकता है- एक व्यापक और दूसरी, सीमित. व्यापक संदर्भ में अनुवाद को प्रतीक सिद्धांत के परिप्रेश्य में देखा जाता है। इस दृष्टि से मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि कथ्य का प्रतीकांतरण अनुवाद है। अपने सीमित अर्थ में अनुवाद भाषा सिद्धांत का संदर्भ लेकर चलता है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि कथ्य का भाषांतरण अनुवाद है। [1]

ii) पाश्चात्य विद्वान

1) डार्ट (Dostert) – अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसका संबध विशेष रूप से अर्थांतरण की समस्या से है। यह अर्थांतरण एक भाषा के सुसंबद्ध प्रतीकों में होता है। [Translation is that branch of Applied Science of language which is specially concerned with the problem or the fact of the transference of meaning from one set of patterned symbols into another of patterned.]

2) कैटफोर्ड (Catford) – अनुवाद एक भाषा के पाठपरक उपादानों का दूसरी भाषा के पाठपरक उपादानों के रूप में समतुल्य के सिद्धांत के अधाता पर प्रतिस्थापना है। [The replacement of textual material in one language by equivalent textual material in another language.]

3) ई.ए.नाइडा (E.A.Naida) – अनुवाद का संबंध स्रोतभाषा के संदेश का पहले अर्थ और फिर शैली के धरातल पर लक्ष्यभाषा में निकटतम, स्वाभाविक तथा तुल्यार्थक उपादान प्रस्तुत करने से होता है।

[Translating consist in producing in the receptor language the closest natural equivalent to the message of the source language, first in meaning and secondly in style.]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि:-

1. अनुवाद के लिए दो भाषाओं की आवश्यकता होती है।
2. यह एक भाषा से दूसरी भाषा में पुन:सृजन होता है।
3. पुन:सृजन करते समय अर्थ को यथावत दूसरी भाषा में ले जाया जाता है।

[1] प्रो. रवीद्रनाथ श्रीवस्तव,अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य (उद्धृत)

4. मूल अर्थ का प्रतिस्थापन करते समय लक्ष्य भाषा में उसके निकटतम और स्वाभाविक उपादान प्रस्तुत किए जाते हैं।
5. अनुवाद व्यापक संदर्भ में कथ्य का प्रतीकांतरण और सीमित संदर्भ में कथ्य का भाषांतरण है।

आ) अनुवाद का स्वरूप

अनुवाद दो भिन्न भाषा-भाषियों के बीच विचारों के आदान-प्रदान का एक सशक्त माध्यम है। इसकी सहायता से दो भिन्न सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं के बीच एक संबंध स्थापित किया जा सकता है। इससे बहुभाषिक स्थिति की विडंबना से बचने में आसानी होती है। इस कार्य में अनुवादक को एक कलाकार या रचनाकार की भांति सृजन की प्रक्रिया से गुजरना होता है। वह यह सृजन मूल पाठ के लेखक की भांति ही करता है। वह मूल के आधार पर लक्ष्य भाषा में अपनी लेखन प्रतिभा का उपयोग कर पहले से सृजित पाठ का पुन:सृजन करता है। पुन:सृजन करते समय अनुवादक अनुवाद की वैज्ञानिक प्रक्रिया तथा भाषा सिद्धांतों का अनुपालन करता है। इसलिए अनुवाद को वैज्ञानिक कला भी कहा जाता है।[2] अत: अनुवाद को कला और विज्ञान से संबद्ध विषय के रूप में स्वीकार करने से इसका स्वरूप व्यापक हो जाता है और भाषा सिद्धांतों से संबद्ध विषय के रूप में इसका स्वरूप सीमित हो जाता है।[3] प्रो. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने अनुवाद के स्वरूप को दो संदर्भों में देखने का प्रयास किया है – सीमित संदर्भ और व्यापक संदर्भ।[4] उन्होने अनुवाद के सीमित संदर्भ को भाषा के सिद्धांतों से जोड़ा है। हर भाषा स्थानीय परिवेश, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों से प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए हिंदी में संदर्भानुसार 'घट' और 'कलश' 'घड़ा' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अंग्रेजी में इनका समानार्थी शब्द है 'POT'। POT कह देने से 'घट' या 'घड़ा' का बोध हो जाता है लेकिन 'कलश' का सही अर्थ संप्रेषित नहीं होगा। 'कलश' का अभिप्राय पानी से भरे और पूजा में उपयोग किए जाने वाले घड़े से है। अंग्रेजी भाषा समुदाय में 'पूजा' की संकल्पना नहीं है। इसीलिए 'कलश' को संप्रेषित करने वाला शब्द भी नहीं है। इसी तरह अंग्रेजी के 'स्नो' तथा 'आइस' के लिए हिंदी में 'बर्फ' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जबकि अभिव्यक्ति के स्तर पर स्नो तथा आइस में भेद है। इसलिए अनुवाद में इस प्रकार की कठिनाई से पार पाने के प्रयास के रूप में अनुवाद के सीमित संदर्भ में अनुवाद के दो आयाम स्वीकार किए गए हैं। पहला आयाम 'पाठ' से संबंधित है तथा दूसरा उससे उत्पन्न होने वाले प्रभाव से संबंधित। कहने का अभिप्राय है कि जिस प्रकार मूल पाठ अपने पाठकों को प्रभावित करता है, उसी तरह अनूदित पाठ प्राभावित करे। वह लक्ष्य भाषा के पाठक को अनुवाद न लगे। उसे (लक्ष्य भाषी पाठक) वह

[2] अनुवाद:सिद्धांत और प्रयोग, डॉ.जी. गोपीनाथन, पृ.25

[3] अनुवाद प्रक्रिया के विविध सोपान,डॉ.मंजु गुप्ता, अनुवाद,अंक 100-101, जुलाई-दिस्ंबर, श्रीमती नीता गुप्ता (सं), पृ.44

[4] अनुवाद: सिद्धांत और समस्याएँ, प्रो.रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ.कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ. 2

अपनी भाषा की कृति लगे।[5] उदाहरण के लिए 'सीपी और शंख' रामधारी सिंह दिनकर का विदेशी कविताओं के हिंदी अनुवाद का संग्रह है। लेकिन उनके मित्रों ने उस संग्रह की कविताएँ को पढ़ने के बाद उन्हें अनुवाद न मानकर दिनकर जी की मौलिक रचना माना। इसी काव्य संग्रह की कुछ कविताओं का रूसी में अनुवाद यह मानकर किया गया कि ये दिनकरी जी की मौलिक रचनाएँ हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने इसमें जिन कविताओं का अनुवाद प्रस्तुत किया है, उसमें मूल के बिंब, प्रतीक, विचार या मुहावरों के जोड़ के हिंदी की प्रकृति एवं संस्कृति के अनुरूप नए बिंब, प्रतीक, विचार तथा मुहावरे गढ़ दिए।[6]

सीमित संदर्भ में अनुवाद को 'कथन के भाषांतरण' के रूप में देखा जाता है। अनुवाद का यह स्वरूप विशेषकर कविता के अनुवाद में देखने को मिलता है। इस रूप में अनुवाद को पाठ मूलक माना गया है, जहाँ स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के पाठ के स्वरूप की चर्चा की जाती है।[7] यहाँ अनुवादक पाठ के बाहर नहीं जा सकता है। वह विभिन्न स्तरों पर मूलपाठ की भाषा का विश्लेषण करता है और उसके रूप को लक्ष्य पाठ में व्यंजित करता है। इस स्तर पर अनुवादक को वाक्य-विन्यास तथा अर्थ पर अपना ध्यान केंद्रीत करना होता है। अनुवाद के इस स्वरूप में मूल पाठ के 'कथ्य' या 'अर्थ' का अधिक महत्व होता है शैली पक्ष का नहीं। इसीलिए इसे अनुवाद का सीमित स्वरूप कहा जाता है।

अनुवाद का व्यापक संदर्भ प्रतीक सिद्धांत से जुड़ा हुआ है। डार्ट के अनुसार अनुवाद एक भाषा के सुसंबद्ध प्रतीकों से दूसरी भाषा के सुसंबद्ध प्रतीकों में अर्थ का अंतरण है। भाषा के सुसंबद्ध प्रतीकों से तात्पर्य किसी भाषा विशेष के शब्द है। भोलानाथ तिवारी भाषा को यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था मानते हैं।[8] ध्वनि प्रतीकों की यह यादृच्छिकता अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग दिखाई देती है। उदाहरण के लिए हिंदी का शब्द है 'बेटा'। इसके लिए मराठी में 'मुलगा', तेलुगु में 'कोडुकु' तथा अंग्रेजी में 'सन' (Son) शब्द का व्यवहार किया जाता है। वस्तुतः ये सभी शब्द मात्र प्रतीक हैं जो उस भाषा-भाषी के लिए रुढ़ हो चुके हैं और समाज में इन्हें स्वीकार किया जा चुका है। इसी तरह किसी भी भाषा के विभिन्न शब्द किसी न किसी अर्थ के लिए रूढ़ बना दिए जाते हैं। जैसे – खाट, मेज, रोटी, तवा, लोटा आदि। इन शब्दों का स्वतंत्र रूप में कोई अस्तित्व नहीं होता है। ये वास्तविक वस्तुओं के स्थान पर व्यवहृत प्रतीकात्मक भाषिक अभिव्यक्तियाँ हैं। प्रतीक विज्ञान (Similogy) की संकल्पना प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक सस्यूर ने भाषाविज्ञान के एक अंग के रूप में की थी, जिसके अंतर्गत समाज द्वारा स्वीकृत प्रतीकों तथा उसके प्रकार्यात्मक संदर्भों का अध्ययन किया जाता है। उन्होंने इसे 'Similogy' (प्रतीक विज्ञान) कहा।[9] 'Similogy' ग्रीक के 'Semion' से बना है। 'Semion' का अर्थ है प्रतीक।

---

[5] अनुवाद प्रक्रिया के विविध सोपान,डॉ.मंजु गुप्ता, अनुवाद,अंक 100-101, जुलाई-दिस्ंबर, श्रीमती नीता गुप्ता (सं), पृ.45

[6] इन सभी कविताओं की भाषा बुनियादी हिंदी है, डॉ.रामधारी सिंह दिनकर, अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य संगोष्ठी स्मारिका: सहित्येतर हिंदी अनुवाद:दिशाएँ और चुनौतियाँ, प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभ देव शर्मा (सं), पृ. 65

[7] अनुवाद प्रक्रिया के विविध सोपान,डॉ.मंजु गुप्ता, अनुवाद,अंक 100-101, जुलाई-दिस्ंबर, श्रीमती नीता गुप्ता (सं), पृ.45

[8] भाषाविज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 4

[9] अनुवाद प्रक्रिया के विविध सोपान,डॉ.मंजु गुप्ता, अनुवाद,अंक 100-101, जुलाई-दिस्ंबर, श्रीमती नीता गुप्ता (सं), पृ.48

प्रतीक विज्ञान की मूल इकाई प्रतीक है। प्रसिद्ध प्रतीकशास्त्री पीयर्स के अनुसार 'प्रतीक वह वस्तु है जो किसी के लिए किसी वस्तु के स्थान पर प्रयुक्त होती है'।[10] उदाहरण के लिए शब्द है 'कमल'। उच्चारित और लिखित रूप में 'कमल' वास्तव में 'कमल' नहीं है। वह 'कमल' नामक फूल का प्रतिनिधि शब्द है। यह ध्वनि प्रतीकों का यादृच्छिक क्रम मात्र है जिसका व्यवहार प्रयोगकर्ता वास्तविक 'कमल' के स्थान पर करता है। वस्तुतः यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। प्रतीक की अवधारणा त्रिवर्गीय संकेत संबंधों पर आधारित है। ये संबंध तीन इकाइयों के आधार पर बनते हैं। इन तीन इकाइयों को क्रमशः संकेतित वस्तु (Referent), संकेतार्थ (Reference) और संकेत प्रतीक(Sign) कहा जाता है।[11] इन इकाइयों को क्रमशः वास्तविक वस्तु, यादृच्छिक अर्थ तथा ध्वनि प्रतीक (शब्द) भी कहा जा सकता है। इन इकाइयों को निम्नांकित आरेख द्वारा समझा जा सकता है[12]:-

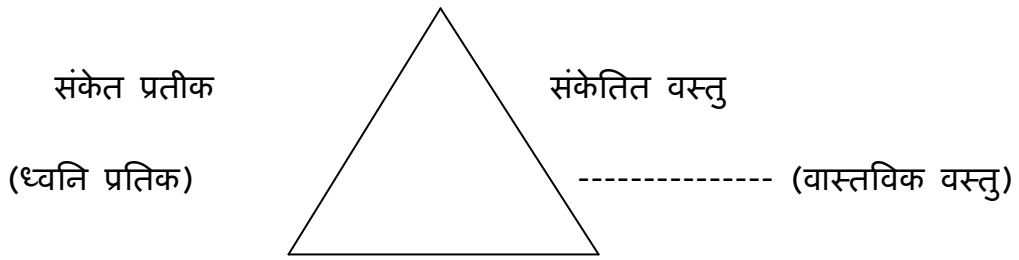

उपर्युक्त आरेख से दो तथ्य स्पष्ट होते हैं। पहला, संकेतित वस्तु का संकेतार्थ से तथा संकेतार्थ का ध्वनि प्रतीक से सिधा संबंध है। लेकिन संकेतित वस्तु और प्रतीक का सीधा संबंध नहीं है। प्रतीक सीधे संकेतित को संकेतित नहीं करता वरन उसको संकेतित करने के लिए संकेतार्थ का सहारा लेना पड़ता है। अतः कहा जा सकता है कि संकेतित वस्तु के लिए ध्वनि प्रतीकों का निर्माण यादृच्छिकता के आधार पर किया जाता है। दूसरा, ध्वनि प्रतीकों के निर्माण में केवल बाह्य जगत की वस्तुओं का ही योगदान नहीं रहता वरन प्रयोगकर्ता के जातीय इतिहास, उसकी सभ्यता एवं संस्कृति का भी योगदान अवश्य रहता है। उदाहरण के लिए एक भाषी समुदाय में कोई एक पत्थर का टुकड़ा 'शिवलिंग' का प्रतीक हो सकता है किंतु दूसरे प्रयोगकर्ता अर्थात अन्य भाषी समुदाय के लिए वह मात्र पत्थर का टुकड़ा ही हो सकता है।[13] इसी तरह बच्चे को अन्य भाषा सिखाते समय 'M-A-N-G-O' (मैंगो) याने 'आम' सिखाया जाता है। हिंदी के 'आ-म' ध्वनि प्रतीक से 'आम' संकेतित वस्तु के लिए आम का संकेतार्थ प्रकट होता है। उसी तरह अंग्रेजी में 'M-A-N-G-O' ध्वनि

[10] अनुवादः सिद्धांत और समस्याएँ, प्रो.रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ.कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ. 3
[11] अनुवादः सिद्धांत और समस्याएँ, प्रो.रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ.कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ. 3
[12] अनुवादः सिद्धांत और समस्याएँ, प्रो.रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ.कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ. 4
[13] अनुवादः सिद्धांत और समस्याएँ, प्रो.रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ.कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ. 4

प्रतीक से 'MANGO' संकेतित वस्तु के लिए 'MANGO' का संकेतार्थ प्रकट होता है। बच्चा अपनी भाषा के ध्वनि प्रतीकों की सहायता से अन्य भाषा के ध्वनि प्रतीकों को समझता है और संकेतित वस्तु का ज्ञान प्राप्त करता है। इसीलिए प्रतीक के संबंध में कहा जा सकता है कि कथ्य ही संकेतार्थ है और प्रतीक का 'नाम' अभिव्यक्ति है। किसी भी भाषा में कथ्य और अभिव्यक्ति का संबंध यादृच्छिक होता है। इसी कारण से किसी एक कथ्य के लिए अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग ध्वनि प्रतीक हैं और एक ही भाषा में उसके अनेक पर्यायवाची भी संभव हैं। जैसे 'घोड़ा' के लिए 'अश्व', 'तुरंग'। 'आम' के लिए 'आम्र', 'अमिया'। इससे यह स्पष्ट होता है कि कथ्य को समान रूप में ग्रहण कर उसे दो भिन्न प्रतीक व्यवस्था द्वारा दो भिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है। अनुवाद में इसी संकल्पना को व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाता है। इसमें एक भाषा के एक प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ को दूसरी भाषा के प्रतीक व्यवस्था के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। इसलिए अनुवाद को स्रोत भाषा के संकेतार्थ का लक्ष्य भाषा के संकेतन प्रतीक के रूप में अंतरण कहा जाता है।[14] इसको निमांकित आरेख द्वारा समझा जा सकता है :-

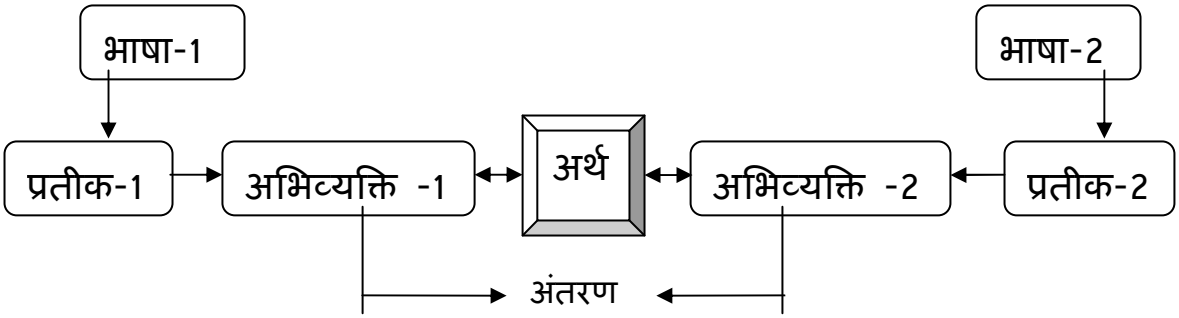

रोमन याकोब्सन के अनुसार प्रतीक व्यवस्था के आधार पर किसी भाषिक पाठ के अनुवाद के तीन रूप हो सकते हैं[15] -

1) अन्वयांतर – अनुवाद के इस रूप में एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था के द्वारा उद्घाटित अर्थ का उसी भाषा की अन्य प्रतीक व्यवस्था के रूप में अंतरण किया जाता है। इसे अंत:भाषिक अनुवाद भी कहा जाता है। प्रेमचंद ने अपनी हिंदी कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' (माधुरी में प्रकाशित,1924) का उर्दू में 'शतरंज की बाजी' (जमाना में प्रकाशित,1924) शीर्षक से अनुवाद किया था। उसमें उन्होंने केवल लिपि परिवर्तन ही नहीं किया था बल्कि शब्द के साथ-साथ वाक्य

[14] अनुवाद प्रक्रिया के विविध सोपान,डॉ.मंजु गुप्ता, अनुवाद,अंक 100-101, जुलाई-दिसंबर, श्रीमती नीता गुप्ता (सं), पृ.47

[15] अनुवाद प्रक्रिया के विविध सोपान,डॉ.मंजु गुप्ता, अनुवाद,अंक 100-101, जुलाई-दिसंबर, श्रीमती नीता गुप्ता (सं), पृ.48

के चयन में भी परिवर्तन किया था। इससे रचना के वातारण के घनत्व और संवेदना के विवृति में अंतर हो गया। इसी तरह शेक्सपीयर के पद्य बद्ध नाटकों को चार्ल्स लैंब ने अंग्रेजी में ही गद्य में व्यक्त किया।[16] इस प्रकार के अनुवाद को अन्वयांतर कहा जाता है।

2) भाषांतर – अनुवाद के इस रूप में एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा उद्घाटित अर्थ का दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा अंतरण किया जाता है। इसे अंतर भाषिक अनुवाद भी कहते हैं। वस्तुतः अनुवाद का वास्तविक क्षेत्र अंतर भाषिक अनुवाद ही है। इसके लिए अनुवादक को द्विभाषिक होना आवश्यक होता है। अनुवाद के रूप में अनूदित पाठ स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा के सर्जनात्मक संयोग से घटित पुनः सृजन बन जाता है। रामधारी सिंह 'दिनकर' द्वारा अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद 'सीपी और शंख' इसका एक उदाहरण है।

3) प्रतीकांतरण – इस रूप में मूल पाठ की प्रतीकात्मकता का अर्थ ग्रहण करके उसका अंतरण भाषेतर प्रतीक व्यवस्था द्वारा किया जाता है। अर्थात किसी कहानी, कविता, गीत, उपन्यास का फिल्म के दृश्य बिंबों द्वारा प्रतीकांतर। इसे अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद भी कहा जाता है। उदाहरण के लिए शरतचंद्र का देवदास, प्रेमचंद का गोदान, फणीश्वरनाथ रेणु का तीसरी कसम उपन्यास का और शेक्सपीयर के 'ओथेलो' नाटक का 'ओमकारा' नाम से फिल्मांकन अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद है।

घ) अनुवाद प्रक्रिया

अनुवाद को परकाया प्रवेश कहा जाता है। यह प्रवेश आसान नहीं होता है। अनुवादक को अनुवाद करते समय तीन भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं – (1) पाठक की भूमिका, (2) द्विभाषिक की भूमिका, (3) रचयिता की भूमिका।[17] पाठक के रूप में अनुवादक मूल पाठ का पठन करता है और मूल लेखक क्या कहता है? उसका मंतव्य क्या है? और उसे कैसे कहता है? को समझने का प्रयास करता है । जब वह इसे समझता है तब एक द्विभाषिक की भूमिका अदा करते हुए मूल भाषा के पाठ में संप्रेषित अर्थ के लिए लक्ष्य भाषा में समानक की खोज करता है। अंततः मूल रचनाकार की तरह ही मूल का लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप पुनः सृजन करता है। इस पूरे कार्य को करने के लिए किसी भी अनुवादक को पाँच चरणों से गुजरना पड़ता है। वे चरण हैं – (1) पाठ-पठन (2) पाठ-विश्लेषण (3) भाषांतरण (4) समायोजन तथा (5) पुनःरीक्षण/तुलना।[18] इसे निम्न आरेख द्वारा अंकित किया जा सकता है :-

[16] अनुवादः सिद्धांत और समस्याएँ, प्रो.रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ.कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ.

[17] अनुवादः सिद्धांत और समस्याएँ, प्रो.रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ.कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ. 19

[18] भाषाविज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 32-33

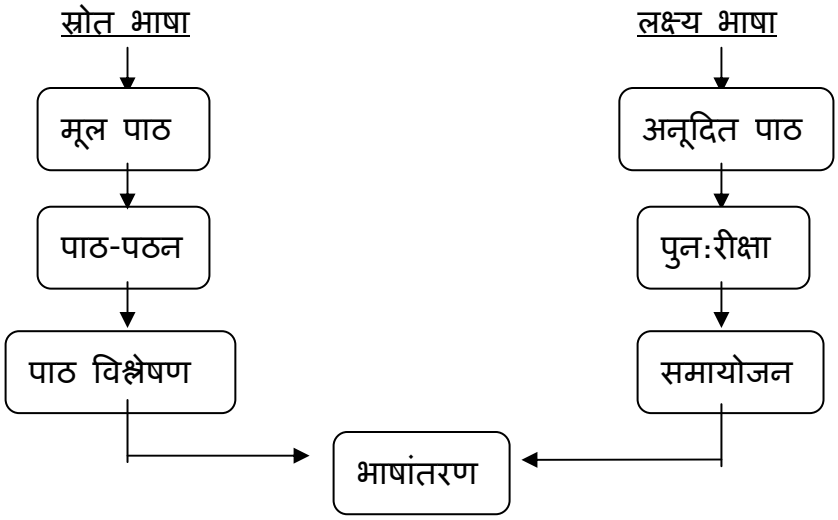

1) पाठ-पठन

पाठ-पठन अनुवाद की प्रक्रिया का पहला चरण है। इसमें अनुवादक किए गए पाठ या चयनित पाठ का तटस्थ होकर पठन करता है। वह भाषिक अर्थ को देखते हुए उसके मूल भाव तथा उसमें अंतर्निहित विचार की गहराई तक जाने का प्रयास करता है। मूल पाठ के लेखक की भाव भूमि पर पहुँचना, उसकी मूल अनुभूति को अनुभव करना आसान नहीं होता है। इसीलिए पाठ-पठन की प्रक्रिया को बहुत जटिल माना जाता है।

2) पाठ विश्लेषण

अनुवाद का दूसरा चरण है पाठ विश्लेषण। अनुवाद करने की दृष्टि से ही मूल पाठ का विश्लेषण किया जाता है। इसमें कई उपचरण भी हो सकते हैं। जैसे – कहाँ वाक्य का, कहाँ प्रोक्ति का, या कहाँ वाक्य की छोटी इकाइयों (उपवाक्य, पदबंध, शब्द) का अनुवाद किया जाए। यह भी विचार किया जाता है कि कहाँ प्रोक्ति को तोड़कर दो-तीन वाक्य बनाएँ और कहाँ दो-तीन वाक्यों को मिलाकर प्रोक्ति बनाएँ। साथ ही मूल पाठ में प्रयुक्त अलंकार, प्रतीक, मुहावरे एवं लोकोक्तियों का भी विश्लेषण किया जाता है।

3) भाषांतरण

भाषांतरण अनुवाद का तीसरा और महत्वपूर्ण चरण है। यहीं पर मूल की भाषा बदली जाती है। पाठ विश्लेषण में विश्लेषित इकाइयों का भाषांतरण किया जाता है। इसमें ध्यान रखा जाता है कि मूल की तरह सहज लगने वाले लक्ष्य भाषा के अलंकार, प्रतीक, मुहावरे तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाए. वाक्य का भाषांतरण लक्ष्य भाषा की भाषिक इकाइयों के अनुरूप करने का प्रयास किया जाता है।

4) समायोजन

यह अनुवाद प्रक्रिया का चौथा चरण है। इसे पुनःगठन भी कहा जाता है। भाषांतरण के बाद अनूदित सामग्री को तटस्थता के साथ देखा जाता है। लक्ष्य भाषा के प्रवाह की दृष्टि से वाक्य, पदबंध, शब्द आदि को बदलने की जरूरत होने पर बदल दिया जाता है। कभी किसी शब्द को अतिरिक्त मानकर छोड़ दिया जाता है तो कभी आवश्यकतानुसार जोड़ा भी जाता है। उदा:- *'Mohan was a good boy.'* का हिंदी में अनुवाद करते समय *'a'* का *'एक'* के रूप में अनुवाद की आवश्यकता नहीं होती है। समायोजन में *'एक'* निकाल दिया जाएगा क्योंकि हिंदी में *'मोहन अच्छा लड़का था'* होगा। इसके विपरीत हिंदी से अंग्रेजी men अनुवाद करते समय *'a'* जोड़ना पड़ेगा। यह अंग्रेजी भाषा की प्रकृति के अनुरूप होगा।

5) तुलना

अनुवाद प्रक्रिया का अंतिम चरण है तुलना। इसे पुनःरीक्षण भी कहा जाता है। इसमें मूल और अनूदित पठ को साथ-साथ रखकर मिलान किया जाता है। देखा जाता है कि मूल के अर्थ, विचार, भाव आदि अनुवाद में आ पाए हैं या नहीं। मूल में प्रयुक्त छंद, वक्य संरचना आदि से जो प्रभाव उत्पन्न होता है वैसा अनूदित पाठ के पठन से होता है या नहीं। अभिव्यक्ति पक्ष और प्रभाव पक्ष की तुलना करके अनुवाद को मूल के जितना हो सके उतना निकट लाने का प्रयास किया जाता है।

उपर्युक्त पाँच चरणों से गुजरकर अनुवाद को सभी प्रकार से अच्छा अनुवाद बनाने का प्रयास किया जाता है। जब अनुवाद अनुवाद न लगकर मौलिक रचना लगता है तो उसे अच्छा, उत्तम अनुवाद कहा जाता है। एक अच्छा अनुवादक अपनी अनूदित कृति को सभी प्रकार से मौलिक रूप प्रदान करने का प्रयास करता है।

च) अनुवाद की उपादेयता

'अनुवाद' को प्राय: कुछ विद्वान कला, शिल्प या विज्ञान मानते रहे हैं। भोलानाथ तिवारी के अनुसार यह अंशत: कला, अंशत: शिल्प और अंशत: विज्ञान है।[19] आज अनुवाद को कला, शिल्प या विज्ञान मानने की बहस निरर्थक हो गई है। आधुनिक अनुवाद शास्त्र अनुवाद प्रक्रिया को एक वैज्ञानिक प्रक्रिया मानता है। अत: अनुवाद एक प्रकार का विज्ञान है।[20] अनुवाद को केवल विज्ञान मान लें या फिर कला और शिल्प तब भी अनुवाद की उपदेयता अपने-आप सिद्ध हो जाती है। अनुवाद कला और शिल्प के रूप में एक ओर जहाँ लक्ष्य भाषा के पाठक के मनोरंजन का साधन बनता है वहीं दूसरी ओर मूल पाठ के लेखक के मन की अभिव्यक्ति को लक्ष्यभाषा के पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने का उपयुक्त माध्यम भी है। इससे लक्ष्यभाषा के पाठक का मनोरंजन और ज्ञानवर्धन, दोनों हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अनुवाद को विज्ञान मान लेने से वह मानव जीवन

[19] अनुवाद क्या है? कला, शिल्प या विज्ञान, अनुवाद कला, भोलानाथ तिवारी, पृ.13

[20] अपनी बात, अनुवाद का सामाजिक परिपेक्ष्य, प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभ देव शर्मा (सं), पृ.8

की प्रगति का एक संवाहक के रूप में स्वीकार्य हो जाता है। अतः अनुवाद कला, शिल्प और विज्ञान के रूप में मानव जाति की मानवीय संवेदना के विकास और ज्ञानवर्द्धन का महत्वपूर्ण आधार भी है।

अनुवादकों के अथक परिश्रम और दूरदृष्टिका का ही परिणाम है कि अन्य भाषाओं में रचित ज्ञान-विज्ञान तथा चिंतन-मनन को जानने-समझने में आसानी हुई है। यदि मानवीय मनीषा ने अनुवादों का यह सिलसिला शुरु न किया होता तो आज संस्कृत, हिंदी तथा भारत की अन्य भाषाओं के महान साहित्यकारों की उत्कृष्ट कृतियाँ और विश्व की अन्य भाषाओं में प्रकाशित महान रचनाएँ अपनी-अपनी भाषाओं के पाठकों तक संकुचित होकर रह जातीं.[21] अतः वैश्विकरण के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि अनुवाद आधुनिकीकरण, पश्चिमिकरण, औद्योगिकीकरण, जातीय विविधता और बहुसांस्कृतिक्ता के पाठ का निर्माण करनेवाला मुख्य घटक बन गया है क्योंकि अंतरराष्ट्रीय संचार में उसकी महती भूमिका है।[22]

सामान्यतः हिंदी को प्रयोग अथवा व्यवहार के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है – बोलचाल की हिंदी, साहित्य की हिंदी और प्रयोजनमूलक हिंदी।[23] अनुवाद विशेषतः प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंध रखता है। प्रयोजनमूलक हिंदी के संदर्भ में ही अनुवाद की आवश्यकता अत्यधिक है। भारत में आद्यौगिक क्रांति के साथ ही प्रयोजनमूलक हिंदी का भी विकास हुआ। इसके विकास में अनुवाद का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विदेशी भाषाओं अंग्रेजी, रूसी, जापानी आदि में प्राप्त ज्ञान-विज्ञानऔर सूचनाओं को हिंदी तथा भारत की अन्य भाषाओं मे लाने के क्रम में अनुवाद हमारे व्यापक व्यवसाय तंत्र का अभिन्न अंगा बन गया है।[24] वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान को जब अनूदित किया जाता है तब लक्ष्य भाषा में मूल भाषा की तकनीकी शब्दावली का पर्याय प्रस्तुत किया जाता है। वह पर्याय सामान्यतः मूल संकल्पना को द्योतित करने वाला अनूदित रूप ही होता है।[25] विविध ज्ञान-विज्ञान से संबंधित तकनीकी शब्दों का हिंदी में निर्माण अनुवाद के शाब्दिक अनुवाद और भावानुवाद दो प्रकारों के द्वारा भी किया जाता है। जैसे शाब्दिक अनुवाद (हरित क्राँति, वामपंथी), भावानुवाद (obstetries प्रसूति, amorous bite विषकन्या दंश).[26]

---

[21] अनुवाद, अंक 100-101, जुलाई-दिसंबर 1999, पृ.9

[22] विश्व साहित्य एवं अनुवाद:हिंदी का संदर्भ, डॉ ऋषभ देव शर्मा, हिंदी-भारत समूह, इंटरने से उद्धृत,पृ.2

[23] प्रयोजनमूलक हिंदी:अवधारणा और अनुवाद, अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य संगोष्ठी स्मारिकाः सहित्येतर हिंदी अनुवादः दिशाएँ और चुनौतियाँ, प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभ देव शर्मा (सं), पृ. 31

[24] वहीं, पृ.35

[25] तकनीकी शब्दावली की विकास यात्रा, प्रो सूरजभान सिंह, अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभ देव शर्मा (सं), पृ. 391

[26] तकनीकी शब्दावली की विकास यात्रा, प्रो सूरजभान सिंह, अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभ देव शर्मा (सं), पृ. 397

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों के साथ-साथ आज व्यापार या व्यावसायिक क्षेत्रों में भी अनुवाद की आवश्यकता दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। "व्यावसायिक जगत में भाषा के संदर्भ में जो कहावत प्रचलित है वह यह है कि उपभोक्ता अपनी भाषा में खरीदता है किन्तु व्यापारी ग्राहक की भाषा में ही बेचता है।" ['you buy in your language but you sell in the language of your customers'][27] आज जितनी भी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हैं वे भले ही अपना कामकाज अपनी भाषाओं में अर्थात अंग्रेजी में करती हैं लेकिन अपने ग्राहकों के साथ संप्रेषण के लिए ग्राहकों की भाषा का उपयोग करती हैं। भाषाविद अनुवाद को भिन्न भाषाओं के बीच का 'सेतु' मानते हैं। ये व्यावसायिक कंपनियाँ उपभोक्ताओं से संवाद स्थापित करके अपने उत्पाद की ओर आकर्षित करने और अपने उत्पाद को खरीदवाने के लिए इसी सेतु का सहारा लेती हैं।[28] इन कंपनियों का काम विज्ञापनों के बिना संभव नहीं है। विज्ञापन मूलत: अंग्रेजी में बनाए जाते हैं और हिंदी सहित भारत की अन्य भाषाओं में उनका अनुवाद किया जाता है। इस अनुवाद को एकदम सटीक की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। ताकि उपभोक्ता अपनी भाषा में विज्ञापन देख उत्पाद की ओर आकर्षित हो और उसका क्रय करे.[29] सूचना प्रौद्योगिकी के विकास से पिचले कुछ वर्षों में संचार व्यवस्था के विशेष उपादानों की आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। जैसे – रेडियो, दूरदर्शन, समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, इंटरनेट आदि. इन उपादानों के द्वारा सूचनाओं का प्रभाशाली संप्रेषण होने लगा है। जो कार्य कुछ वर्षों पहले असंभव जान पडता था वह आज संभव हो रहा है। इस महत्तर कार्य में अनुवाद और अनुवादकों की भूमिका प्रशंसनीय है। इसे देखते हुए कहा जा सकता है कि 'वसुदैव कुटुंबकम्' की भारतीय संकल्पना को मूर्त रूप मिलने लगा है। "आज संसार के किसी भी कोने में घटनेवाली घटना की सूचना हमें अपनी भाषा में तुरंत मिल जाती है। इन सूचनाओं के संप्रेषण की प्रक्रिया पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसके मूल में अनुवाद कला है।"[30] संचार व्यवस्था का कार्य पत्रकारिता पर निर्भर करता है और पत्रकारिता अपने जन्म से ही अनुवाद से जुडी हुई है। अनुवाद पत्रकारिता का एक विशिष्ट उपादान है। सूचनाएँ एवं समाचार विभिन्न विदेशी एजेंसियों से भी प्राप्त किए जाते हैं। बाद में अपेक्षित भाषा में उनका अनुवाद करके प्रकाशन-प्रसारण किया जाता है। प्रौद्योगिकी के इस युग में संप्रेषण व्यवस्था के क्षेत्र में अनुवाद का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। इसी कारण से अनुवाद की उपादेयता बहुमुखी और बहुआयामी बनाती दिखाई दे रही है।[31]

---

[27] व्यावसायिक जगत और अनुवाद, डॉ गोपाल शर्मा, अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य संगोष्ठी स्मारिका: सहित्येतर हिंदी अनुवाद: दिशाएँ और चुनौतियाँ, प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभ देव शर्मा (सं), पृ. ४०

[28] वहीं, पृ.४०-४१

[29] हिंदी विज्ञापन और अनुवाद, प्रो ऋषभ देव शर्मा, अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य, प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभ देव शर्मा (सं), पृ. ४६५

[30] हिंदी पत्रकारिता और अनुवाद,बीना श्रीवास्तव,अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य,प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभदेव शर्मा(सं),पृ. ४५७

[31] वहीं, पृ. ४६०

विश्वव्यापारीकरण और आर्थिक उदारीकरण की नीति के कारण भारत में देशी-विदेशी चेनलो की एक बाढ़ सी आ गई है। सिनेमा बाजार से निकालकर अब घर में आ गया है। भारतीय दर्शक अपनी भाषा के आलावा विश्वभर की अन्य भाषाओं की फ़िल्में, समाचार, सीरियल, एनिमेशन कार्टून आदि बड़ी आसानी से घर बैठे देख पा रहा है। अनजाने, अनदेखे और अलग से लगानेवाले लोगों से रू-ब-रू होने का उसे सुअवसर मिल गया है। वह भी अपनी भाषा में. इस कार्य के लिए पहले से डब किए हुए संवादों की भाषा का अनुवाद अपेक्षित भाषा में करके पुन: डबिंग की जाती है। केवल डबिंग के माध्यम से ही नहीं आजकल अन्य भाषा की फ़िल्मों के संवादों का अनुवाद अपेक्षित भाषा में साथ-साथ दिया जाता है। इसे सबटाइटल कहा जाता है। इन दोनों प्रयोजनों के लिए अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। मनोरंजन के इन आधुनिक लोकप्रिय माध्यमों में अनुवादकों की माँग बढ़ने के कारण भी अनुवाद की उपादेयता कों विस्तार मिला है। अनुवाद की सहायता से भाषाई दीवार ▯हाने में सफलता हासिल है।[32]

अनुवाद का कार्य अनेक व्यावसायिक क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। अत: वह अपने आपमें एक व्यवसाय भी है। जहाँ अनुवाद निजी व्यवसायों के प्रचार-प्रसार के लिए उपयोगी है वहीं सरकारी तंत्र में भी इसकी उपादेयता कुछ कम नहीं है। राज्य और केंद्रीय सरकारी कार्यालयों तथा बैंकिंग क्षेत्र में अनुवादक अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। भारत सरकार की राजभाषा नीति के अंतर्गत आज कई युवा हिंदी अनुवादक, हिंदी अधिकारी आदि के रूप में व्यवसाय प्राप्त कर रहे हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि "भारत जैसे बहुभाषी देश में और आधुनिक युग की विस्तृत होती औद्योगिक और तकनीकी दिशाओं में अनुवाद सदैव केंद्र में रहेगा."[33]

II) अनुवाद और भाषाविज्ञान का अंत:संबंध

क) भूमिका

अनुवाद के लिए दो भाषाओं की आवश्यकता होती है जिसे स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा कहा जाता है। यह कार्य दो भिन्न भाषा-भाषियों के बीच विचार विनिमय के लिए एक सेतू या एक माध्यम के रूप में कार्य करता है। प्रसिद्ध भाषाविद डार्ट के अनुसार 'अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की एक शाखा है जिसका संबंध विशेष रूप से अर्थांतरण की समस्या से है। यह अर्थांतरण एक भाषा के सुसंबद्ध प्रतीकों से दूसरी भाषा के सुसंबद्ध प्रतीकों में होता है।' अत: स्पष्ट है कि अनुवाद करते समय अनुवादक को भिन्न प्रकृति की दो भाषाओं की ध्वनि, रूप या पद, वाक्य, प्रयुक्ति, प्रोक्ति तथा अर्थ के संप्रेषण की विधि समझने के पहले, स्रोत भाषा के इन तत्वों को ग्रहण करना होता है। इसके बाद लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप भाषांतरण करना होता है। अनुवाद की प्रक्रिया से गुजरते समय अनुवादक का कभी दोनों भाषाओं की समानताओं से तो कभी विषमताओं

[32] डबिंग और सबटाइटलिंग, डॉ गोपाल शर्मा, अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य,प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभदेव शर्मा(सं),पृ. ४७०

[33] अनुवाद व्यवसाय:दिशाएँ और संभावनाएँ, प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभदेव शर्मा, अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य, प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभदेव शर्मा(सं),पृ. ४९९

से साबका पड़ता है। ऐसी स्थिति में अनुवादक को भाषाविज्ञान की शाखाओं जैसे तुलनात्मक भाषाविज्ञान, व्येतिरेकी भाषाविज्ञान, ध्वनि विज्ञान, रूप या पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान तथा अर्थ विज्ञान के सिद्धांतों का अनुप्रयोग करता होता है।

ख) अनुवाद प्रक्रिया में भाषाविज्ञान की भूमिका

सामान्यतः 'एक भाषा' (स्रोत भाषा) की किसी भी सामग्री को 'दूसरी भाषा' (लक्ष्य भाषा) में बोधगम्य बनाना अनुवाद कहलाता है। अनुवाद में लक्ष्य भाषा कभी एक से अधिक भी हो सकती है तो कभी यह आवश्यक नहीं कि स्रोत भाषा से ही अनुवाद किया जाए। इसे हम उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं – हरिवंश राय 'बच्चन' आल इंडिया रेडियो के लिए 10 और 'भाषा अपनी भाव पराए' नामक काव्य संग्रह के लिए भिन्न भाषाओं की 25 कविताओं का अनुवाद किया था। जबकि वे केवल हिंदी और अंग्रेजी भाषा ही जानते थे। इस संबध में वे बताते हैं कि "आप पूछ सकते हैं कि मैंने इन भाषाओं की कविताओं का अनुवाद प्रस्तुत करने का दुःसाहस कैसे किया जब मैं उन्हें नहीं जानता।.... जाहिर है कि ये कविताएँ अपनी-अपनी भाषा-लिपि में मेरे सामने रख दी जाती तो मैं उन्हें अनूदित नहीं कर सकता था।.... मूल कविता का अंग्रेजी अथवा हिंदी शब्दानुवाद दिया जाता था जिससे मुझे कविता के भाव-विचार को समझने में आसानी होती थी।"[34] यहाँ अलग-अलग भाषाएँ मूल हैं तो अंग्रेजी और हिंदी लक्ष्य भाषाएँ हैं तथा हरिवंश राय 'बच्चन' ने जो अनुवाद किए वे सीधे मूल से नहीं थे। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी और हिंदी स्रोत भाषाएँ कहलाएँगी जो कि असल में लक्ष्य भाषाएँ है। अनुवादक को अनुवाद की प्रक्रिया से गुजरते समय दो या दो से अधिक भाषाओं की प्रकृति से रू-ब-रू होना पड़ता है।

अनुवाद प्रक्रिया की मूल समस्या दो भिन्न भाषाओं के परस्पर संप्रेषण की होती है। यह परस्पर संप्रेषण दोनों भषाओं की संरचना के परिप्रेक्ष्य में ही संभव हो सकता है। इसे निम्नांकित आरेख द्वारा समझा जा सकता है [35]:-

[34] रचना उद्बोधन पाठ चयन का आधार है, डॉ हरिवंश राय बच्चन, अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य, संगोष्ठी स्मारिका, साहित्येतर हिंदी अनुवादः दिशाएँ और चुनौतियाँ, प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभ देव शर्मा, पृ. 63

[35] अनुवादः सिद्धांत और समस्याएँ, प्रो.रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ.कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ. 3

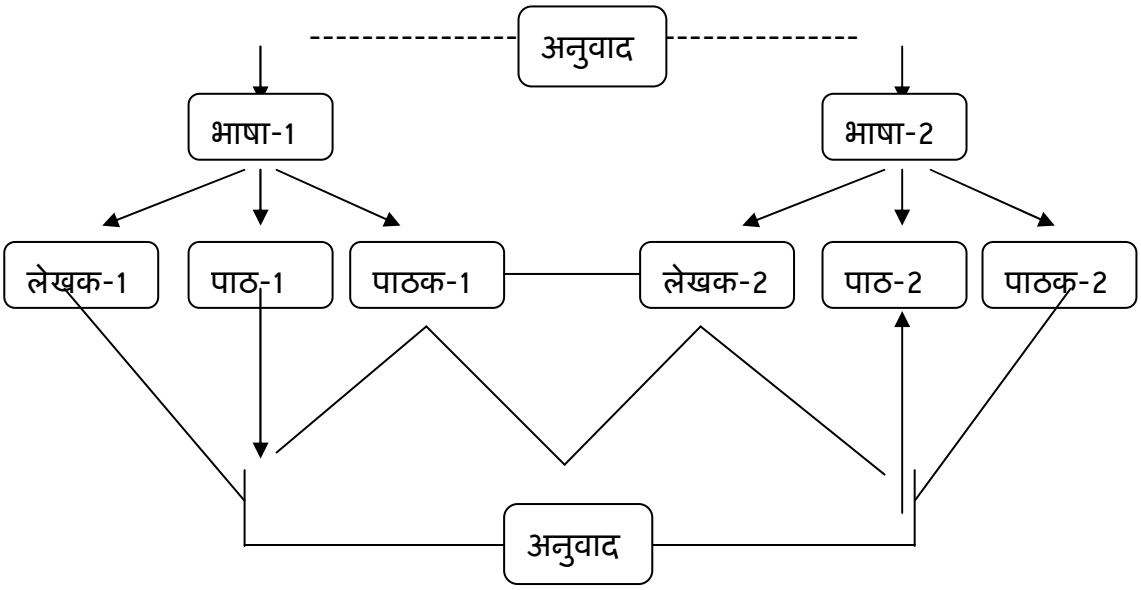

इस आरेख से अनुवाद प्रक्रिया के निम्नांकित तीन बिंदु प्रकट होते हैं:-

1.अनुवाद भाषा-1 के पाठ-1 का भाषा-2 के पाठ-2 के रूप में किया जाता है।

2. अनुवाद का उद्देश्य भाषा-1 में लिखित पाठ-1 के लेखक-1 के मनोभावों, विचारों को भाषा-2 के पाठक-2 तक पहुंचाना है।

3. अनुवादक पाठ-1 का पाठक-1 बनकर पठन करता है और पाठक-2 के लिए पाठ-2 तैयार करने उद्देश्य से लेखक-2 बनता है।

अत: कहा जा सकता है कि अनुवादक सृष्टा भी है। उसे एक ओर जहाँ अनुवाद करते समय मूल लेखक की भांति रचना प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, वहीं दूसरी ओर अन्य भाषा की प्रकृति को समझने के लिए उसके भाषावैज्ञानिक पक्षों की सहायता लेनी पड़ती है।

अनुवादक भाषा-1 और भाषा-2 का बोधन भाषिक संरचना, विषय तथा व्याकरण को ध्यान में रखकर करता है। वह पाठ-1 के रूप में प्रस्तुत सामग्री का विश्लेषण व्याकरण, शब्दार्थ तथा शब्दशक्ति के आधार पर करता है और पाठ-1 में व्यंजित अर्थ के समान अर्थाता अधिक से अधिक समान, निकटतम, सहज समतुल्य अर्थ को ही भाषा-2 के पाठ-2 में अंतरित करता है। यह अंतरण भाषा-2 की भाषिक संरचना को ध्यान में रखकर किया जाता है।[36] ऐसा करते समय अनुवादक को अन्य भाषा की सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। एक भाषा में व्यक्त विचारों, भावों, बिंबों और अर्थच्छवियों को दूसरी भाषा में

[36] समस्याएँ (1), डॉ भीमसेन निर्मल, अनुवाद कया है, डॉ भ.ह.राजूरकर, डॉ राजमाल बोरा (सं), पृ. 127

अभिव्यक्त करना आसान नहीं होता है। "अनुवाद प्रक्रिया में जितनी समस्याएँ दो भाषाओं की विभिन्न सांस्कृतिक, राजनैतिक भौगोलिक और ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के कारण उत्पन्न होती है उससे कईं अधिक समस्याएँ दो भाषाओं के गठन की विशेषताओं के कारण उत्पन्न होती है।"[37] अत: दोनों भाषाओं (स्रोत और लक्ष्य भाषा) के भाषिक गठन का सम्ययक ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक होता है। सभी भाषाएँ यादृच्छिक और वाचिक ध्वनि प्रतीकों की सुनिश्चित व्यवस्था होती है। किसी भी भाषा का प्रारंभिक रूप यादृच्छिक ही होता है। समुदाय की सर्व स्वीकृति मिल जाने पर वह एक व्यवस्था का रूप धारण कर लेती है। अनुभूति के स्तर पर सभी भाषाएँ समान होती हैं।[38] उदाहरण के लिए 'तेलुगू' में छोटे बच्चों को लाड़ प्यार के कारण 'दोर बाबू' कहते हैं। 'दोर बाबू' का शाब्दिक अर्थ 'साहब का लड़का' होता है। यहाँ साहब शब्द का प्रयोग 'गोरे' याने कि अंग्रेज के लिए किया गया है। हिंदी में उसका पर्यायवाची शब्द 'राजा बेटा' है। यहाँ स्पष्ट रूप से तेलुगू 'दोर बाबू' के समान ही 'राजा बेटा' अनुभूति प्रदान करता है लेकिन 'दोर' और 'राजा' की अर्थ अभिव्यक्ति अलग है।[39] ऐसी समस्याओं का समाधान भाषाविज्ञान की शाखाओं (प्रकारों तथा अंगों) के सिद्धांतों के अनुप्रयोग से किया जा सकता है।

ग) अनुवाद प्रक्रिया में भाषाविज्ञान की शाखाओं का अनुप्रयोग

अनुवादक अनुवाद में भाषाविज्ञान की शाखाएँ – ध्वनि विज्ञान, रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान तथा अर्थ विज्ञान के अलावा तुलनात्मक भाषाविज्ञान, व्यतिरेकी भाषाविज्ञान तथा समाज भाषाविज्ञान के सिद्धांतों का अनुप्रयोग करता है। इसीलिए अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की एक शाखा माना गया है।

अ) अनुवाद और ध्वनि विज्ञान

वस्तुत: भाषा ध्वनियों के समूह का नाम है। ध्वनियाँ ही भाषा के संप्रेषण को रूपायित करती हैं।[40] किसी भी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन धवनियों के अध्ययन से ही प्रारंभ होता है। भाषा में प्रयुक्त होने वाली ध्वनियों का अध्ययन करने वाले विज्ञान को ध्वनि विज्ञान कहते हैं। इसे भाषाविज्ञान की आधरभूत शाखा कहा जाता है। यह विज्ञान ध्वनि के उच्चारण, उसके भाषा विशेष में स्थान का विस्तृत अध्ययन करता है।[41]

अनुवाद करते समय अनुवादक को कई बार व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का लिप्यंतरण करना होता है। इस स्थिति में अनुवादक को दोनों भाषाओं की ध्वनि संबंधी विशेषताओं की समानता की समस्या का सामना करना

[37] अनुवाद का भाषावैज्ञानिक पक्ष, श्री सत्यनारायण, अनुवाद कला: कुछ विचार, आनंदप्रकाश खेमाणी, वेद प्रकाश (सं),पृ. 30

[38] अनुवाद के भाषावैज्ञानिक पक्ष, डॉ सुमन कुमार गुप्त, अनुवाद, वार्षिक वेशेषांक 100-101, जुलाई-दिसंबर 1999, श्रीमती नीता गुप्ता (सं), पृ. 130

[39] समस्याएँ (1), डॉ भीमसेन निर्मल, अनुवाद कया है, डॉ भ.ह.राजूरकर, डॉ राजमल बोरा (सं), पृ. 132

[40] आधुनिक भाषाविज्ञान, डॉ कृपाशंकर सिंह, डॉ चतुर्भुज सहाय, पृ. 7

[41] भषाविज्ञान, डॉ भोलानाथ तिवारी, पृ. 27

पड़ सकता है। दो भिन्न भाषाओं में कभी भी समान ध्वनियाँ उपलब्ध नहीं होती हैं। इसलिए अनुवादक को मूल ध्वनियों के स्थान पर अपनी भाषा की उनसे मिलती जुलती या निकटतम ध्वनियों का प्रयोग करना पड़ सकता है। इस प्रकार से मूल के व्यक्तिवाचक संज्ञा का लक्ष्य भाषा में ध्वनि परिवर्तन हो जाता है।[42]

भारत की प्राय: सभी भाषाओं में यूनानी, जापानी, चीनी, तुर्की, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, पुर्तगाली इत्यादि विदेशी भाषाओं के बहुत से शब्द ग्रहण किए गए हैं। हिंदी की शब्द संपदा में भी बहुत से विदेशी शब्द संग्रहित हो गए हैं। "अंग्रेजी में 'ट' और 'ड' ध्वनि हिंदी के 'ट', 'ड' के समान न तो मूर्धन्य या तालव्य है और न 'त', 'द' के समान दंत्य। अंग्रेजी और हिंदी वर्णों के उच्चारण में अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई-सुनाई देता है। अत: उन अंग्रेजी शब्दों की ध्वनियाँ जो हिंदी में आईं हैं वे मूर्धन्य, तालव्य अथवा दंत्य में परिवर्तित हो गई हैं।"[43] जैसे 'डेस्क' से 'डेक्स', 'आगस्ट' से 'अगस्त', 'सेप्टेम्बर' से 'सितंबर'। इसी तरह से 'लंडन' का उच्चारण हिंदी में 'लंदन', फ्रेंच Depot का 'डिपो' हो गया है। इस प्रकार का उच्चारण हिंदी भाषा की ध्वनि प्रकृति के अनुकूल तथा ग्राह्य है।

विदेशी शब्दों का रूपांतरण करने के दो विधियाँ या माध्यम हैं –(1) अनुलेखन (Transcription), (2) लिप्यंतरण (Transliteration)।[44] अनुलेखन में किसी भाषा के अक्षरों को दूसरी भाषा के अक्षरों में परिवर्तित किया जाता है। यह परिवर्तन लक्ष्य भाषा के उच्चारण के अनुकूल होता है। जैसे –

Aristotle - अरस्तू
Socrates - सुकरात
Academy - अकादमी
Glass - गिलास
Interim - अंतरिम इत्यादि।

लिप्यंतरण में विदेशी भाषा के शब्द की ध्वनि को अपनी भाषा की ध्वनि के अनुरूप परिवर्तित किया जता है। इसमें वर्णों को नहीं पूर्ण शब्द के ध्वनि को आधार बनाया जाता है। जैसे – ' आर ए आई एल' की जगह 'रेल' कहा जाता है। कुच्छ अन्य उदाहरण दृष्टव्य हैं –

School (एस सी एच ओ ओ एल) - स्कूल
Bus (बी यू एस) - बस
Road (आर ओ ए डी) - रोड
Shirt (एस एच आई आर टी) - शर्ट

[42] समस्याएँ (3), रमाकांत आपरे, अनुवाद क्या है, डॉ भ.ह.राजूरकर, डॉ राजमल बोरा (सं), पृ. 143
[43] अनुवाद का भाषावैज्ञानिक पक्ष, श्री सत्यनारायण, अनुवाद कला: कुछ विचार, आनंदप्रकाश खेमाणी, वेद प्रकाश (सं),पृ. 31
[44] वही, पृ. 32

Pen (पी ई एन) - पेन इत्यादि।

अनुवादक को अपनी भाषा की ध्वनि के अनुरूप ही शब्दों का लिप्यंतरण करना चाहिए, अन्यथा भाषा की प्रकृति के प्रतिकूल होने पर ऐसे शब्द संबंधित भाषा में स्वीकार्य नहीं होंगे, बल्कि हास्यास्पद भी मालूम पड़ेंगे।[45] कुछ विशिष्ट दशा में सभी शब्दों का लिप्यंतरण करके भाषा में प्रचलित शब्दों को अपनाया जाता है। उदाहरण के लिए ग्रीक 'Alexander' के लिए संस्कृत में 'अलक्षेंद' और हिंदी में 'सिकंदर' शब्द प्रचलित है। इसी के अनुसरण में अंग्रेजी के 'Alexander the Great' को हिंदी में 'सिकंदर महान' का प्रयोग किया जाता है। लिप्यंतरण में अनुवाद की भाषा में शब्द को पूरी तरह ध्वनि के अनुसार ग्रहण किया जाता है। इसके अलावा यदि किसी शब्द के एक से अधिक उच्चारण लक्ष्य भाषा में प्रचलित हों तो सर्वाधिक प्रचलित शब्द का प्रयोग करना चाहिए या फिर लक्ष्य भाषा की ध्वनि के जो सर्वाधिक अनुकूल हो उसे अपनाना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि अनुवाद में ध्वनि विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान रहता है और अनुवादक के लिए ध्वनि विज्ञान का ज्ञान रखना अत्यंत आवश्यक है।

आ) अनुवाद और रूप या पद विज्ञान

भाषा की आधारभूत इकाई वाक्य है और जिस तरह 'प्रोक्ति' के भीतर 'वाक्य' होता है उसी तरह 'वाक्य' के भीतर रूप मिले होते हैं। रूपों के संयोजन से ही वाक्य बनते हैं। जैसे – 'राम ने रावण को बाणों से मारा' वाक्य में चार रूप हैं – 'राम ने' कर्ता कारक रूप, 'रावण को' कर्म कारक रूप, 'बाणों से' करण कारक रूप तथा 'मारा' 'मर' धातु का भूतकालिक रूप। सामान्यतः 'रूप' शब्द ही होते हैं। शब्द जब वाक्य में कारक चिह्नों के साथ प्रयुक्त होते हैं तो पद कहलाते हैं। किसी भाषा के वाक्य में प्रयुक्त ऐसे रूपों या पदों का अध्ययन भाषाविज्ञान की जिस शाखा के अंतर्गत किया जाता है उसे रूप या पद विज्ञान कहा जाता है।[46] रूप विज्ञान में शब्दों की संरचना, अक्षरों से रूप निर्माण, शब्दों से पद बनने आदि की विधि का अध्ययन किया जाता है। अनुवाद में स्रोत भाषा शब्दों के स्थान पर लक्ष्य भाषा के समान अर्थवाले शब्दों को रखा जाता है। अतएव स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा दोनों ही भाषाओं की रूप रचना की जानकारी अनुवादक के लिए अपरिहार्य है। लक्ष्य भाषा के भाषायी □ाँचे के अनुरूप होने वाला अनुवाद अच्छा माना जाता है।[47]

अनुवाद के समय स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की व्याकरण संबंधी विशेषताओं से अवगत होना आवश्यक होता है। किन्हीं दो भिन्न भाषा परिवारों की भाषाओं का व्याकरण एक समान नहीं हो सकता।[48]

---

[45] अनुवाद के भाषावैज्ञानिक पक्ष, डॉ सुमन कुमार गुप्त, अनुवाद, वार्षिक वेशेषांक 100-101, जुलाई-दिसंबर 1999, श्रीमती नीता गुप्ता (सं), पृ. 131

[46] भषाविज्ञान, डॉ भोलानाथ तिवारी, पृ. 27

[47] अनुवाद के भाषावैज्ञानिक पक्ष, डॉ सुमन कुमार गुप्त, अनुवाद, वार्षिक वेशेषांक 100-101, जुलाई-दिसंबर 1999, श्रीमती नीता गुप्ता (सं), पृ. 131

[48] अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद व्याकरण, प्रो.सूरजभान सिंह, पृ 15

उदाहरण के लिए अंग्रेजी का वाक्य है – 'I employed a worker' का हिंदी में अनुवाद करते हैं तो 'मैंने मजदूर/मजदूरनी/श्रमिक को काम पर लगाया/लगाया है' जैसे वाक्य बनते हैं। अनवाद के लिए कुछ अन्य अनुपूरक सूचनाओं की आवश्यकता होती है। जैसे - WORKER स्त्री है या पुरुष, यह कार्य पूर्ण हो गया था या अपूर्ण था। इससे ज्ञात होता है कि भिन्न भाषाओं के व्याकरण की विशेषताएं भी भिन्न होती हैं और किसी भी भाषा के दो पक्ष होते हैं - १) उसकी बनावट और संरचना तथा २) उसका प्रयोजन और प्रकार्य। "भाषा की बनावट की दृष्टि से हम उसकी संरचनात्मक व्यवस्था की बात करते हैं जबकि प्रयोजन के संदर्भ में हम यह बताते हैं कि इसके द्वारा किसी भाषाई समुदाय के व्यक्ति आपस में विचार-विनिमय करते हैं। बनावट और संरचना के संदर्भ का केंद्र उस भाषा का व्याकरण होता है और उसके प्रयोजन के संदर्भ का संप्रेषण।"[49] स्पष्ट है कि अनुवाद में संप्रेषण के लिए दोनों भाषाओं के व्याकरण का ध्यान रखना आवश्यक है। इसे छोड़कर किया गया अनुवाद हास्यास्पद हो जाता है। उदा - 'राम ने मरा को रावण' इस वाक्य में विभक्ति चिह्नों सहित पदों के क्रम बिगड़े हुए हैं। इससे कोई अर्थ संप्रेषित नहीं हो रहा है। इस वाक्य में पदों का सही क्रम होगा -' राम ने रावण को मरा'। कहने का अभिप्राय है कि भाषा में संप्रेषण के लिए उसकी व्याकरणिक प्रकृति के मूल तत्व अर्थात शब्द या पद की व्यवस्था का ज्ञान अपरिहार्य है।

प्राय: सभी भाषाओं में संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, लिंग, वचन, वाच्य, काल आदि व्याकरणिक तत्व होते हैं। भिन्न भाषा के शब्द रूप भी भिन्न होते हैं और उनका प्रयोग भी भिन्न होता है। इसी कारण अनुवाद में व्याकरण संबंधी समस्या उत्पन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए यहाँ कुछ व्याकरणिक तत्वों पर चर्चा की जा रही है :-

<u>लिंग</u> - हिंदी में दो लिंग हैं - स्त्री लिंग और पुल्लिंग तथा अंग्रेजी में चार - feminine, masculine, common और neutral | अत: अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद में अंग्रजी के common और neutral को हिंदी के किस लिंग की कोटी में रखा जाएगा। इसे समझना जरूरी है। लिंग का भाव व्यक्त करने के लिए भाषा में दो पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं - १) हिंदी में प्रत्यय जोड़कर जैसे - घोड़ा - घोडी, बकरा – बकरी। अंगरी में भी prince - princess, lion - lioness आदि २) स्वतन्त्र शब्द जोड़कर जसे मादा मोर - नर मोर, मादा कोयल - नर कोयल। अंग्रेजी में he-goat - she goat। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी और हिंदी में अलग-अलग शब्दों से भी लिंग का बोध किया जाता है और कभी अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करते समय सामान शब्द में प्रत्यय जोड़कर या कभी अलग-अलग शब्द से लिंग भेद को यक्त किया जाता है। जैसे - boy - girl, horse - hare, mother - father, brother - sister शब्दों के लिए हिंदी में लड़का -लड़की, घोड़ा - घोडी, माता - पिता, भाई - बहन आदि। यह भी देखा गया है कि अंग्रेजी में एक ही शब्द से दोनों लिंगों का बोधन होता है। लेकिन हिंदी में उनके अनुवाद करते समय भिन्न शब्दों का प्रयोग करना अनिवार्य हो जाता है। जैसे - Chairman, Member,

[49] भाषाई अस्मिता और हिंदी, डॉ रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, पृ.12

Teacher आदि शब्दों के लिए हिंदी में पुल्लिंग में अध्यक्ष, सदस्य, अध्यापक होता है तो स्त्री लिंग में अध्यक्षा, सदस्या, और अध्यापिका होगा।

वचन - सामान्यत: सभी भाषाओं में दो ही वचन रहते हैं लेकिन कुछ भाषाओं में द्विवचन, त्रिवचन भी होते हैं।[50] हिंदी में बहुवचन के भावों को व्यक्त करने के लिए प्राय: एक वचन में ओं, यों, एँ, गण, वाले प्रत्यय लगाया जाता है जबकि अंग्रेजी में 's' या 'es' । उदा - सदस्य - member, सदस्यों या सदस्यगण - members, दुकानवाला - shopkeeper, दुकानवाले - shopkeepers, कविता-poem, कविताएँ - poems आदि। इसी तरह वाक्य में क्रिया रूपों के परिवर्तन से भी काल और वचन का बोध हो जाता है। उदा - अंग्रेजी के 'is' और 'was' बहुवचन में 'are' और 'were' हो जाते हैं। उसी तरह हिंदी में भी 'है' तथा 'था' बहुवचन में 'हैं' तथा 'थे' हो जाते हैं। कभी-कभी हिंदी में आदर व्यक्त करने के लिए भी एकवचन के साथ बहुवचन रूप का प्रयोग किया जाता है। जैसे – 'Your Father has come' के लिए हिंदी में 'तुम्हारे/आपके पिताजी आए हैं' ।

काल - हिंदी में काल के तीन भेद हैं - वर्तमान, भूत और भविष्य। क्रिया रूपों को जोड़कर काल के भेद और उपभेद को प्रकट किया जाता है। हिंदी के काल के साथ कार्य के स्वरूप को भी व्यक्त किया जाता है। जैसे - 'वह भागा' और 'वह भगा रहा था'। पहले पद में कार्य होने के समय का बोध नहीं होता है। दूसरे पद में यह संकेत मिलता है कि कार्य कुछ समय से हो रहा था। कार्य के स्वरूप (aspect) संबंधी समस्याओं के कारण उत्पन्न हुई अनुवाद की जटिलताओं को सुलझाना कभी-कभी बहुत कठिन हो जाता है। यह कठिनाई इसलिए होती है कि विश्व की किन्हीं दो भाषाओं में सामान स्थितियों में काल समान रूप में प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं। उदा - 'I will hit him, when I see him' इसमें 'when' शब्द भले ही भविष्य में होने वाले कार्य को इंगित करता है किन्तु उसका यह रूप वर्तनाम काल का है। ऐसे रूप तर्कसंगत नहीं होते लेकिन ये भाषाई विशेषताओं को प्रकट करते हैं।

आज का युग वैज्ञानिक युग है और इस युग में नित नए आविष्कार, नई घटनाएं, नए विचार, नई परंओअराएँ, नई वस्तुएं, समाज में आते रहती हैं। जिसके के लिए प्राय: नए शब्दों को बनाया जाता है।[51] इसलिए कभी-कभी अनुवादक को शब्दोकोशों या अन्य स्रोतों से जब कोई सहायता नहीं मिलती है तब उसे नए शब्द गढ़ने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में रूप विज्ञान अनुवादक की सहायता करता है।

अत: कहा जा सकता है कि रूप विज्ञान के सिद्धांतों का अनुप्रयोग करके अनुवाद के लिए दो भिन्न भाषाओं की व्याकरणिक असमानताओं की समस्या का समाधान किया जा सकता है।

इ) अनुवाद और वाक्य विज्ञान

[50] अनुवाद का भाषावैज्ञानिक पक्ष, श्री सत्यनारायण,अनुवाद कला: कुछ विचार, आनंदप्रकाश खेमाणी, वेद प्रकाश (सं),पृ.34

[51] शब्दों का जीवन, डॉ भोलानाथ तिवारी, पृ.9

वाक्य सार्थक शब्द का सुव्यवस्थित समूह होता है। यह भाव को व्यक्त करने की दृष्टि से अपने-आप में पूर्ण होता है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने वाक्य को अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया है। अतः उनके अनुसार पूर्ण अर्थ की प्रतीती कराने वाले एक शब्द या एकाधिक शब्दों का समूह वाक्य है।[52] वाक्यार्थ की प्रतीती के लिए उसमें प्रयुक्त शब्दों के सबंधों को जानना भी बेहद जरूरी होता है। शब्दों के वाक्यगत संबंधों को संरचनात्मक अर्थ भी कहा जाता है। वाक्य संरचना से अभिप्राय है शब्दों को वाक्य में इस तरह राखना कि उनके संबंध स्पष्ट रूप से सूचित हों।[53] प्रायः दो भिन्न भाषाओं की वाक्य रचना अथवा वाक्य में शब्दों का क्रम एक सा नहीं होता। उदाहरण के लिए सामान्यतः हिंदी की वाक्य संरचना का क्रम - कर्ता, कर्म और क्रिया है जबकि अंग्रेजी की वाक्य संरचना का क्रम - कर्ता, क्रिया और कर्म। जैसे - 'राम ने (कर्ता) रावण को (कर्म) मारा (क्रिया)' यही वाक्य जब अंग्रेजी में लिखा जाता है तो 'Ram (कर्ता) killed(क्रिया) Ravana (कर्म)'।

वाक्य विज्ञान के अंतर्गत वाक्य के इसी प्रकार के गठन या पदों की सुनिश्चित व्यवस्था से वाक्य निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है और अनुवाद में इस विज्ञान की सहायता से दो भिन्न भाषाओं की संरचना, उसके व्यावहारिक, सांस्कृतिक पक्षों को समझने में आसानी होती है। अनुवाद करते समय स्रोत भाषा की वाक्य संरचना को लक्ष्य भाषा की वाक्य संरचना में ढाला जाता है। अतः किसी भाषा से अनुवाद करते समय शब्द के स्थान पर शब्द रखा जाएगा तो वह अनुवाद न होकर अव्यवस्थावाद मात्र हो जाएगा।[54] उदा - अंग्रेजी वाक्य - 'I drink water' का अनुवाद हिंदी में 'मैं पीता पानी' नहीं बल्कि 'मैं पानी पीता हूँ' होगा। इसी तरह हिंदी और तेलुगू की वाक्य रचना का क्रम मुख्य रूप से परोक्ष कथन में एक दम उल्टा होता है। उदा - 'मैं आता हूँ, कहकर उसने कहा' हिंदी में इसी वाक्य का रूप 'उसने कहा कि मैं आऊँगा' होगा।[55] हिंदी में अप्रत्यक्ष कथन का चलन नहीं है। इसकी जानकारी के आभाव में अनुवादक स्रोत भाषा की छाया को लक्ष्य भाषा की वाक्य संरचना में ले आता है। ऐसा प्रायः कभी जल्द बाजी में भी हो सकता है। परिणामतः ऐसे वाक्य लक्ष्य भाषा की वाक्य रचना के प्रतिकूल होने के कारण दुरूह और अटपटे लगते हैं। अनुवाद करते समय इस बात का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है।[56] उदा- 'Ram said that he was going to Agra' अंग्रेजी के इस परोक्ष कथन का हिंदी में (1) 'राम ने कहा कि मैं आगरा जा रहा हूँ', (2) 'राम ने कहा था कि वह आगरा जा रहा था।' दो अनुवाद हो सकते हैं। इनमें से वाक्य (1) हिंदी की प्रकृति के अनुसार ठीक है मगर वाक्य (2) अंग्रेजी की छाया से प्रभावित है।

---

[52] भाषाविज्ञान, डॉ भोलानाथ तिवारी, पृ. 207

[53] आधुनिक भाषाविज्ञान, डॉ कृपाशंकर सिंह, डॉ चतुर्भुज सहाय, पृ.145

[54] अनुवाद का भाषावैज्ञानिक पक्ष, श्री सत्यनारायण,अनुवाद कलाः कुछ विचार, आनंदप्रकाश खेमाणी, वेद प्रकाश (सं),पृ.40

[55] समस्याएँ (1), डॉ भीमासेना निर्मल, अनुवाद कया है?, डॉ भ.ह.राजूरकर, डॉ राज्मल बोरा (सं),पृ.129-130

[56] अनुवाद के भाषावैज्ञानिक पक्ष, डॉ सुमन कुमार गुप्त, अनुवाद, वार्षिक वेशेषांक 100-101, जुलाई-दिसंबर 1999, श्रीमती नीता गुप्ता (सं),पृ.132)

भाषा में सर्वनामों का बहुत महत्व होता है। इनका अन्य शब्दों के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। सर्वनामों के बारे में दो बातें प्रमुख होती हैं – (1) वे शब्द जिनका स्थान वे लेते हैं तथा (2) वे वाक्य रचनाएँ जिनमें उनको बैठाया जाता है। जिस शब्द के स्थान पर सर्वनाम रखा जा सकता है उसे सर्वनाम का वर्ग-अर्थ (Class meaning) कहा जा सकता है। जिन वाक्य रचनाओं में इन शब्दों के स्थान पर किसी सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है उन्हें स्थानापन (Substitute type) कह सकते हैं। अन्य प्रकार के शब्दों के समान सर्वनामों का भी एक अर्थ होता है। उदा – अंग्रेजी में 'she' शब्द केवल 'स्त्री' वाचक के लिए ही प्रयुक्त नहीं होता है अपितु वह किसी देश, मोटर, जलयान के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है। अतः अनुवादक को यह जानकारी रखना बेहद जरूरी होता है कि विभिन्न भाषाओं में सर्वनामों का प्रयोग विभिन्न अर्थों के संप्रेषण के लिए भी होता है। अंग्रेजी और ग्रीक भाषाओं में एक बार संज्ञा के प्रयोग के बाद सामान्यतः सर्वनामों का प्रयोग किया जाता है। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी भाषा का अनुसरण कर अनुवाद करना गलत होगा। बल्कि सही प्रयोग के अनुसार वाक्य रचना के लिए सर्वनामों को संज्ञा में निश्चय ही बदला जा सकता है।[57]

अनुवाद में वाक्य का विशिष्ट आशय ग्रहण कर सामाजिक संदर्भों को ध्यान में रखते हुए भाषिक संरचना के अनुसार अंतरण करना चाहिए। उदा –

i) A boy has come - लड़का आया है।

ii) Father has come - पिताजी आए हैं।

इन दोनों वाक्यों में संज्ञा पद अलग हैं और उस अनुसार हिंदी क्रिया पद में भी परिवर्तन हो गया है जबकि अंग्रेजी क्रिया पद में कोई परिवर्तन नहीं है। अंग्रेजी वाक्य (भाषा) में हो सकता है आदर का भाव व्यक्त करना आवश्यक न हो लेकिन हिंदी में आवश्यक है।[58]

वाक्य विज्ञान के अंतर्गत पदबंध और उपवाक्यों का विशेष महत्व होता है। हर भाषा की अपनी वाक्य संरचना होती है जो उस भाषा की प्रकृति के अनुकूल होती है। अनुवाद करते समय कर्ता/कर्म के साथ विभक्तियों/कारकों के प्रयोग पर भी ध्यान देना अनिवार्य है। उदा – अंग्रेजी में 'In' से प्रारंभ होने वाली अनेक फ्रेज (पदबंध) हैं जिनका अनुवाद करने पर यह आवश्यक नहीं कि हमेशा 'में' रहे। अनुवाद में 'में' के स्थान पर कहीं 'से', कहीं 'पर' और कहीं 'को' हो सकता है और कहीं पर 'In' छोड़ दिया जता है। जैसे –

i) 'में' – In a city - नगर में

ii) 'पर' – I met him in his house – मैं उससे घर पर मिला

iii) 'से' – reached office in time – समय से दफ्तर पहुँचा

iv) 'को' – In the evening – शाम को

[57] अनुवाद का भाषावैज्ञानिक पक्ष,श्री सत्यनारायण,अनुवाद कलाः कुछ विचार,आनंदप्रकाश खेमाणी,वेद प्रकाश (सं),पृ. 41-42

[58] अनुवाद कला:सिद्धांत और प्रयोग, प्रो. कैलाशचंद्र भाटिया, पृ. 28

v) In order to – के लिए , In presence of – समक्ष, In addition to – के अतिरिक्त। यहाँ वाक्य (v) में 'In' को छोड़ दिया गया है। इसी तरह के परिवर्तन 'to', 'at' आदि से युक्त अंग्रेजी वाक्यों के हिंदी अनुवादों में भी हो सकते हैं। विशेषण उपवाक्य का अनुवाद हिंदी की प्रकृति के अनुकूल होना चाहिए। जैसे - The horse that I selected won the race.

जो घोड़ा मैंने चुना, वह दौड़ में जीत गया।

There is a person whose age you could never guess.

वहाँ एक ऐसा व्यक्ति रहता है जिसकी उम्र का तुम अंदाज नहीं लगा सकते।

अनुवाद में अंग्रेजी के लंबे और अटपटे वाक्यों को दो वाक्यों/उपवाक्यों में तोड़ा जा सकता है। जैसे – एक वाक्य - Please note that you have been allotted code no….. Which should be quoted by you in all future correspondence with us also on all proposal papers. दो वाक्य ***कृपया ध्यान रखें कि आपको कोड सं..... नियत की गई है। भविष्य में हमारे साथ होने वाले पत्र व्यवहर में तथा समस्त प्रस्ताव पत्रों में हमेशा इसका उल्लेख करें।*** अंग्रेजी वाक्यों में कभी-कभी कुछ सुपर फ्लुअस (फालतू) वाक्यांशों का प्रयोग किया जाता है। हिंदी में अनुवाद करते समय उन्हें छोड़ा भी जा सकता है। ऐसे वक्यों का प्रयोग किसी विशेष भावों की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है। भाषाविज्ञान में ऐसे वाक्यों को 'अनावश्यक' कहा जाता है। जैसे –

I am afraid - संकोच तथा हिचकिचाहट के लिए

I wonder - आश्चर्ययुक्त संदेह के लिए

For favour of necessary action - आवश्यक कार्रवाई के लिए इत्यादि। अतः अनुवाद में मूल भाषा की अर्थ छवियों को लक्ष्य भाषा में अंतरित करते समय लक्ष्य भाषा की वाक्य संरचना के अनुरूप लिखना ही अभिप्रेत है अन्यथा अर्थ का अनर्थ होने की अधिक संभावना बन जाती है।

इस तरह हम देखते हैं कि अनुवाद के लिए अनुवादक को वाक्य विज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है। इससे उसे मूल भाषा के साथ-साथ लक्ष्य भाषा की वाक्य संरचना समझने में आसानी हो जाती है।[59]

ई) अनुवाद और अर्थ विज्ञान

अर्थ विज्ञान के अंतर्गत भाषा के अर्थ पक्ष का अध्ययन – विश्लेषण किया जात है। आमुख शब्द का अर्थ क्या है, अर्थ का निर्धारण कैसे होता है, वह कितने प्रकार का होता है, अर्थ में परिवर्तन के कारण और उनकी दिशाएँ, समानार्थता, विलोमार्थता तथा बहुअर्थता आदि का अध्ययन किया जाता है।[60] अनुवाद का मुख्य

[59] अनुवाद में भाषाविज्ञान की भूमिका, प्रो.कैलाश चंद्र भटिया, अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य संगोष्ठी स्मारिका: सहित्येतर हिंदी अनुवाद:दिशाएँ और चुनौतियाँ, प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभ देव शर्मा (सं),पृ. 28

[60] भाषाविज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृ. 28

उद्देश्य अर्थ संप्रेषण का ही होता है। अनुवाद में शब्द और उनके रूप बदले जाते हैं। इस बदलाव के दौरान अर्थ को सुरक्षित रखने का आग्रह प्राय: सभी भाषाविदों तथा अनुवादकों ने किया है। यहाँ तक कहा गया है कि अनुवाद परकाया प्रवेश है। अर्थात यह एक भाषा के अर्थ (आत्मा) का दूसरी भाषा (पर काया) में प्रवेश। अनुवाद में अर्थ का आशय होता है – अभिव्यक्ति, भावना और विचार। इनकी ओर ध्यान दिया जाएगा लेकिन इन सब में व्यावहारिक रूप में 'अर्थ' ही प्रधान शब्द है। इसलिए यह कहना अधिक उपयुक्त है कि अनुवाद में ध्यान अर्थ पर केंद्रित रहता है। अनुवाद में अर्थ को बदला नहीं जा सकता।[61]

अनुवाद करते समय अनुवादक शब्दार्थ के लिए शब्दकोश का उपयोग करता है और मूल के शब्दार्थ के स्थान पर लक्ष्य भाषा में समानार्थक शब्द को रख देता है। लेकिन उसके समक्ष समस्या तब आती है जब उसे भाषा में विशिष्ट प्रयोग के शब्दों का सामना करना पड़ता है।[62] हर भाषा के अपने-अपने विशिष्ट प्रयोग होते हैं जिनके लिए शब्दकोशों में पर्याय प्राय: नहीं मिलते हैं। अर्थता प्रत्येक भाषा में अनेक ऐसे शब्द होते हैं जिनको प्राय: पर्याय समझा जाता है। व्यवहार में इन सभी पर्यायों में निकटता तो होती है पर अर्थ की समानता कम दिखाई देती है। जैसे – कोमल, मृदुल, मुलायम, नाजुक, नर्म, सुकुमार सभी का भाव एक समान होते हुए भी प्रयोग से अर्थ में भिन्नता आ जाती है।[63] अनुवाद में स्रोत भाषा के शब्दों आदि के लिए लक्ष्य भाषा में समानार्थ को व्यक्त करने वाले शब्दों, वाक्यों आदि का उपयुक्त चयन बहुत महत्वपूर्ण है। सर्जनात्मक अनुवाद के लिए तो यह अत्यंत आवश्यक है। "सर्जनात्मक भाषा में प्राय: एक प्रसंग में एक ही शब्द या वाक्यादि उपयुक्त होता है। ऐसा न होने पर सर्जनात्मक सौंदर्य को क्षति पहुँचती है।"[64] साथ ही अर्थ की सहजता और सटीकता भी बाधित हो सकती है। अत: अनुवादक लक्ष्य भाषा में अर्थ के अनुसार उपयुक्त शब्द-वाक्य का चयन करके इस समस्या से बच सकता है। उदाहरण के लिए शब्द के स्तर पर अर्थ की दृष्टि से उपयुक्त शब्द का चयन –

रेखांकित अंग्रेजी शब्द के लिए	हिंदी पर्याय	उपयुक्त शब्द
i) That is a very <u>serious</u> conclusion	गंभीर, महत्वपूर्ण	महत्वपूर्ण
ii) under the <u>protection</u> of stars	सुरक्षा,शरण, बचाव	छाँव

[61] भाषा का अधुनिकीकरण, डॉ. राजमल बोरा, अनुवाद कया है, डॉ भ.ह.राजूरकर, डॉ राजमल बोरा (सं), पृ.69

[62] अनुवाद का भाषावैज्ञानिक पक्ष,श्री सत्यनारायण,अनुवाद कला: कुछ विचार,आनंदप्रकाश खेमाणी,वेद प्रकाश (सं),पृ. 43

[63] अनुवाद में भाषाविज्ञान की भूमिका, प्रो.कैलाश चंद्र भटिया, अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य संगोष्ठी स्मारिका: सहित्येतर हिंदी अनुवाद:दिशाएँ और चुनौतियाँ, प्रो दिलीप सिंह, प्रो ऋषभ देव शर्मा (सं),पृ. 24

[64] अनुवाद कला, डॉ. भोलनाथ तिवारी, पृ. 27

iii) you are cold hearted	सर्ददिल,ठंडादिल, हृदयहीन,पत्थर दिल	हृदयहीन

इसी तरह वाक्य के स्तर पर भी अर्थ की दृष्टि से उपयुक्त वाक्य के चयन की समस्या होती है। जैसे –

अंग्रेजी वाक्य के लिए	अनूदित वाक्य	उपयुक्त वाक्य
i) You are rather transparent	अ) तुम तो बल्कि पारदर्शी हो आ) तुम्हारे दिल की बातें तो सहज ही सामने आ जाती हैं इ) तुम साफ़ पकड़े जाते हो	तुम साफ़ पकड़े जाते हो
ii) I am feeling chilly	अ) मुझे बड़ी ठंड लग रही है आ) मुझे बहुत सर्दी लग रही है इ) मैं ठंड से जमा जा रहा/रही हूँ ई) मेरी तो कुल्फी जमी जा रही है	मेरी तो कुल्फी जमी जा रही है

भाषाओं में कुछ शब्द सामजिक परिवेश, सांसकृतिक संदर्भ तथा सांस्कारिक अनुष्ठानों से संबंधित होते हैं। इनके अर्थ भिन्न भाषा-भाषियों के लिए समझपाना कठिन होता है। भाषाओं में मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया जाता है। ये भी किसी भाषा के लोक सांस्कृतिक पहलुओं को उजाकर करते हैं। इसीलिए अनुवाद में संबंधित भाषा से संबद्ध सामजिक परिवेश, सांसकृतिक संदर्भ तथा सांस्कारिक अनुष्ठानों से संबंधित शब्दों का तथा मुहावरों या लोकोक्तियों का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। जैसे - अंग्रेजी का एक शब्द है - 'Gospel truth' इस के लिए हिंदी में अनुवाद 'गोस्पेल में वर्णित सत्य' कहने से वह भाव या अर्थ व्यक्त नहीं होता जो मूल में हो रहा है। इसके लिए तो 'वेद वाक्य' का प्रयोग उपयुक्त होगा। 'वेद' भारत के हर व्यक्ति का परिचित शब्द है। इससे 'गोस्पेल' के अर्थ को आसानी से समझा जा सकता है। **मुहावरे** - आँख का तारा होना, नौ दो ग्यारह होना, दिन पहाड़ होना आदि के लिए अंग्रेजी में क्रमश: To be an apple of one's eye, To show clean pair of heels, To be hang heavy upon का प्रयोग किया जाता है | इसी तरह **लोकोक्तियों** के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं - जो गरजते हैं वे बरसते नहीं - Barking dogs seldom bite। नाच न जाने आँगन टेड़ा - A bad workman quarrels with his tools। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि दोनों भाषाओं के मुहावरों और लोकोक्तियों के शाब्दिक अर्थ में अंतर है लेकिन भावार्थ की निकटता है।

भाषाओं में कलात्मक और असरदार अभिव्यक्ति के लिए मुहावरों और लोकोक्तियों के साथ-साथ 'सादृश्य' का भी प्रयोग किया जाता है। इससे अभिव्यक्ति में अधिक कलात्मकता और बिंबात्मकता उत्पन्न हो जाती

है।[65] उदा - अंग्रेजी में कहते हैं - 'as black as jet' इस के लिए हिंदी में 'जेट जैसा काला', 'जेट काला', 'बहुत काला' कहने से वह प्रभाव उत्पन्न नहीं होता जो मूल से होता है। इसके समान हिंदी में 'कोयले जैसा काला' या 'कौए जैसा काला' का प्रयोग अधिक उपयुक्त होगा।

रिश्ते-नातों की शब्दावली में भिन्नता - जैसे - हिंदी के मामा, ससुर, फूफा आदि शब्दों के लिए अंग्रेजी में father-in-law का, uncle का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न विषयों तथा कार्य क्षेत्रों की प्रयुक्ति में भी भिन्नता - जैसे 'Issue' शब्द का संदर्भानुसार अर्थ बदलता रहता है। जैसे - पत्राकारित के क्षेत्र में 'अंक', चिकित्सा के क्षेत्र में 'बच्चे', प्रशानिक क्षेत्र में 'जारी करना' । हिंदी में अनुवाद करते समय ऐसे बदलाव को ध्यान में रखना आवश्यक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अर्थ विज्ञान की सहायता से अनुवादक दो भिन्न भाषाओं में प्रयुक्त होने वाले समान अर्थ को उद्घाटित करने वाले शब्दों का चयन करके अर्थ को एक भाषा से दूसरी भाषा में ले जाने में सक्षम बन सकता है।

घ) निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनुवाद का कार्य एक भाषा की आत्मा (अर्थ) को दूसरी भाषा की काया में प्रवेश करने के समान है। अनुवाद दो भाषाओं या दो से अधिक भाषाओं में किया जाता है। इसलिए भाषा भिन्नता के साथ ही भाषा विशेष की सामाजिक, सांस्कृति और शैलीगत विशेषताओं को समझना अनिवार्य होता है। एक अच्छा अनुवादक इन सभी पहलुओं पर ध्यान देता है और अपनी कार्ययित्री एवं भावयित्री प्रतिभा का उपयोग करके सफल अनुवाद करने का प्रयास करता है। इसी कारण विद्वानों ने अनुवाक कार्य को पुन: सृजन और अनुवादक को सृजनकर्ता माना है। अनुवाद की प्रक्रिया से गुजरते समय अनुवादक भाषाविज्ञान की शाखाओं की सहायता लेता है। इन शाखाओं के अंतर्गत भाषा के अध्ययन-विश्लेषण के लिए एक कालिक भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान, समाज भाषाविज्ञान, तुलनात्मक और व्येतिरेकी भाषाविज्ञान आदि के सिद्धांतों का अनुप्रयोग किया जाता है। अत: स्पष्ट है कि अनुवाद में भी इन शाखाओं के सिद्धांतों का अनुप्रयोग करते समय भाषाविज्ञान की अन्य शाखाओं का उसमें समावेश हो जाता है। अनुवादक इन शाखाओं के सिद्धांतो से कभी नए शब्द गढ़ता है, कभी उपयुक्त शब्दार्थ-वाक्य का चयन करके लक्ष्य भाषा में मूल भावार्थ को प्रतिष्ठित करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य – सं. प्रो. दिलीप सिंह, प्रो.ऋषभ देव शर्मा

[65] अनुवाद कला, डॉ. भोलनाथ तिवारी, पृ. 112-121

2. अनुवाद क्या है - सं. डॉ. भ.ह. राजूरकर, डॉ. राजमल बोरा
3. अनुवाद कला : कुछ विचार – सं. आनंद प्रकाश खेमाणी, वेद प्रकाश
4. आधुनिक भाषाविज्ञान – डॉ. कृपाशंकर सिंह, डॉ. चतुर्भुज सहाय
5. भाषाविज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
6. अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद व्याकरण – प्रो. सूरजभान सिंह
7. भाषाई अस्मिता और हिंदी – प्रो. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव
8. शब्दों का जीवन - डॉ. भोलानाथ तिवारी
9. अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग – प्रो. कैलाशचंद्र भाटिया
10. अनुवाद कला - डॉ. भोलानाथ तिवारी
11. अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य, संगोष्ठी स्मारिक, साहित्येतर हिंदी अनुवाद, दिशाएँ और चुनौतियाँ - सं. प्रो. दिलीप सिंह, प्रो.ऋषभ देव शर्मा
12. अनुवाद, वार्षिक विशेषांक 100-101, जुलाई-दिसंबर 1999 – सं. श्रीमती गीता गुप्ता

अनुवाद की चुनौतियाँ

डॉ.ई. विजय लक्ष्मी

सामान्य रूप से किसी एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में अभिव्यक्त करने के लिए जिस माध्यम का उपयोग किया जाता है, उसे अनुवाद कहते हैं। इसके अन्तर्गत यह कोशिश की जाती है कि मूल सामग्री अधिक से अधिक अपने मौलिक रूप के साथ एक भाषा से दूसरी भाषा में चली जाए। जिस भाषा से सामग्री ली जाती है, उसे स्रोत भाषा कहते हैं और जिस भाषा में उसे ले जाया जाता है, उसे लक्ष्य भाषा कहा जाता है। अर्थात अनुवाद स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में सामग्री पहुँचाने का काम करता है। अनुवाद की प्रक्रिया सम्पन्न करने के लिए स्रोत भाषा, लक्ष्य भाषा, सामग्री और अनुवादक इन मूल चार तत्वों का होना अनिवार्य है। अनुवादक ही अनुवाद की प्रणाली या पद्धति तय करने का काम करता है।इसके लिए उसे अनुवाद की तकनीक का गहरा ज्ञान उपलब्ध करना होता है तथा स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा की गहरी समझ उपलब्ध करनी होती है।

विश्व भर के विभिन्न देशों में अधिकांशतः अलग-अलग भाषाएँ बोली जाती है। भिन्न भाषा-भाषी वाले एक देश के विचार या साहित्य दूसरे भिन्न भाषा-भाषी देश के पास पहुँच रहे हैं। ज्ञान-विज्ञान संबंधी नए विचार, नए अनुसंधान, व्यापार, पर्यटन संबंधी विकास को एक दूसरे देश तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण जिम्मा अनुवाद उठा रहा है। विश्व की भाषाओं के मध्य सम्पर्क का एक माध्यम भाषा-विज्ञान और समाज भाषा-विज्ञान है तो दूसरा माध्यम अनुवाद है। अनुवाद के माध्यम से ही दुनिया भर की भाषाओं की रचनात्मकता को भी एक जगह इकट्ठी करने का काम भी संभव हो जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि अनुवाद मुख्य रूप से एक सामाजिक-सांस्कृतिक अभियान होता है। "विश्व फलक पर तेजी से आविर्भूत ज्ञान- विज्ञान तथा प्रोद्योगिकी से संबद्ध सभी विषयों और क्षेत्रों की जानकारी देने, देश- विदेश की संस्कृति, राजनीति कूटनीति,कूट नीति,व्यवसायिक नीति की समुचित अभिव्यक्ति देने में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। " (हिंदी अनुवाद समस्या और समाधान- डॉ. जितेन्द्र वत्स, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली-2005, पृ-69)

अनुवाद मुख्य रूप से एक सामाजिक- सांस्कृतिक अभियान होता है। कोई भी समाज जब अपनी भाषा का निर्माण करता है तो लिपि से लेकर शब्द समूह और वाक्य गठन तक में सामाजिक और सांस्कृतिक

अनुभव भरता है। हम जानते है कि समाज केवल कुछ लोगों के समूह का नाम नहीं होता, बल्कि वह सामाजिक संबंधों के स्वरूप से निर्मित होता है। इसी प्रकार हर समाज की अपनी एक सांस्कृतिक पहचान तथा उसके विकास की परम्परा होती है। इन दोनों आधारों पर ही अर्थात समाज संस्कृति और इतिहास के प्रभाव में ही साहित्य की रचना की जाती है।

किसी समाज के साहित्य को जब किसी दूसरे समाज की भाषा में ले जाया जाता है तो वह केवल कुछ शब्दों और ध्वनियों का शब्दकोशीय अर्थ नहीं होता, बल्कि मूल समाज की सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक विशिष्टता को ले जाना होता है।यह कार्य जब सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है तो दो अपरिचित अथवा अल्प परिचित समाज परस्पर निकट आते हैं और सम्पूर्ण मानव संस्कृति के विकास के अभियान को गति प्राप्त होती है। "अनुवाद की कोटि, समप्रेषणीयता तथा अन्य बातें अनुवादक की अपनी ज्ञान सीमा व वस्तुस्थिति की पकड़ पर निर्भर करती है। निसंदेह ही अनुवाद एक देश, प्रदेश अथवा साहित्य से दूसरे देश, प्रदेश, साहित्य व संस्कृति के बीच सेतु का कार्य करता है।" (अनुवाद और अनुप्रयोग, डॉ.दिनेश चमोला, शैलेश, आदर्श प्रकाशन-2006,पृ-42)

विश्व साहित्य की जो परिकल्पना की जाती है, उसमें एक ओर तो तुलनात्मक साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है तो दूसरी ओर अनुवाद। वर्तमान में तुलनात्मक साहित्य और तुलनात्मक अध्ययन बहुत अधिक प्रभावशाली हो गए हैं। तुलनात्मक अध्ययन बिना अनुवाद की सहायता के संभव नहीं है। मानव ज्ञान के अध्ययन में समाज-सांस्कृतिक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका है। विशेषकर आज की दुनिया में विश्व के समाजों को समझने के लिए उनकी भाषा और साहित्य में समान प्रवृत्तियों की जानकारी आवश्यक है और उन आधारों को खोजना जरूरी है, जो दुनिया के एक कोने के आदमी को दूसरे कोने के आदमी से जोड़ता है। इसके लिए अन्तर अनुशासनिक अध्ययन (interdisciplinary study system) का विकास हुआ है। किसी भी अन्तर अनुशासनिक अध्ययन के लिए अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। अनुवाद के बिना भिन्न- भिन्न भाषाओं के साहित्य को इकट्ठा ही नहीं किया जा सकता। इस तरह अनुवाद भाषाओं के बीच ही बात-चीत शुरू नहीं करवाता बल्कि मनुष्यों के बीच भी बौद्धिक संवाद के दरवाजे खोलता है। यह एक प्रकार से विश्व भर के लोगों के लिए आपसी संवाद का लाभदायक माध्यम है।

विज्ञान और तकनीकी विकास ने आज विश्व भर के तमाम देशों के बीच दूरियाँ खत्म कर दी हैं। अनुवाद की उपयोगिता को हमें भूमंडलीकरण के संदर्भ में भी देखना चाहिए। उत्तर आधुनिक युग में विश्व ग्राम की जो कल्पना की गई है,उसकी पूर्ति में भी अनुवाद ही सबसे बड़ा सहायक है।भूमण्डलीकरण के युग

में पूरी विश्व व्यवस्था बाजार व्यवस्था में बदल गई है। जो देश पहले अपने दरवाजे बंद रखते थे,उन्होंने भी उन्हें खोल दिए हैं। बड़े-बड़े देशों की आर्थिक संस्थाएँ दूसरे देशों में फैल गए हैं।इससे एक ओर मानव श्रम बहुत अधिक गतिशील हो गए हैं,दूसरी ओर सूचनाओं और जानकारियों के विश्व स्तर पर आदान-प्रदान की आवश्यकता बढ़ गई है। यही कारण है कि कम्प्यूटर पर प्रयोग होने वाली भाषाओं की संख्या बढ़ती जा रही है और दूर क्यों जाएँ,भारत की संसद में भी विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्ति की सुविधा बढ़ रही है।इन सब में अनुवाद की ही भूमिका है।

भूमण्डलीकरण विज्ञापन के माध्यम से आदमी की आवश्यक्ताएँ भी तय कर रही है और उनकी पूर्ति का साधन भी बता रहा है। बाजारवाद बहुत कुछ अनुवाद के सहारे चल रहा है और भूमण्डलीकृत समाज को भी अनुवाद की भरपूर आवश्यक्ता है।इसी प्रकार उपनिवेशवाद का नया संस्करण उत्तर उपनिवेशवाद सामने आ रहा है। यह उत्तर उपनिवेशवाद आर्थिक और बाजारवादी रास्तों से गुलामी के नए रूप सामने ला रहा है। इधर विश्व की भाषाओं में अनूदित रूप में जो सामग्री आ रही है, वह उत्तर उपनिवेशवाद के रहस्यों को खोलती है। आज दुनिया को समझने के लिए राजनैतिक संरचना और आर्थिक संरचना के नए गठजोड़ को समझना जरूरी है। आदमी को पूँजीवाद के नव उपनिवेशवाद ने दबा दिया है। उत्तर उपनिवेशवाद अब लोगों की समझ में आने लगा है। उत्तर उपनिवेशवाद के क्रूर रूप को समझने के लिए हमें एक ही साथ दुनिया के महाद्वीपों के साहित्य की जानकारी चाहिए। अगर हम अपने आस-पास के उत्तर उपनिवेशवाद को जानना चाहते हैं तो हमें भारत,म्यामाँ,चीन,ईरान,आफ़गानिस्तान,कोरिया,जापान आदि देशों में जो कुछ लिखा जा रहा है, खासकर आदमी की आजादी के पक्ष में लिखा जा रहा है, उसे जानना आवश्यक है और इसमें अनुवाद ही सहायता कर सकता है। यदि हमें उत्तर उपनिवेशवादी प्रवृत्ति के विरोध में खड़ा होना है, तो अनुवाद एवं उसके महत्व को समझना होगा।

विश्व के वर्तमान परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए यह समझना होगा कि अनुवाद के समक्ष कौन-कौन सी गंभीर चुनौतियाँ हैं? सबसे पहली चुनौती पद्धति विषयक है। वस्तुतःइसे परम्परागत चुनौती कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत अनुवादक को तय करना होता है कि वह कौन सी प्रणाली को चुने। किसी एक को, एक से अधिक को या फिर सारी प्रणालियों को मिलाकर अपना रास्ता तय करें। जैसे अनुवादक स्रोत भाषा की सामग्री के अनुसार उपयुक्त माध्यम या प्रणाली- शाब्दिक अनुवाद,शब्द प्रति शब्द अनुवाद, भावानुवाद या फिर छायानुवाद आदि प्रणालियों में से एक को अपनाता है या एक से अधिक प्रणालियों को या फिर मिश्रित प्रणालियों का चयन करता है और स्रोत भाषा सामग्री को लक्ष्य भाषा तक पहुँचाता है।

प्रणाली के चयन की चुनौती का सामना करने के साथ-साथ अनुवादक को कई अन्य खतरे भी उठाने पड़ते हैं, जिसमें एक है भाषिक संरचना विषयक खतरा। एक ही भाषा परिवार की दो भाषाएँ व्याकरण एवं भाषिक संरचना की दृष्टि से एक दूसरे से अंतर लिए हुए हो सकती हैं। यदि दो भाषाएँ दो अलग-अलग भाषा परिवार की होंगी तो उनमें अंतर होने स्वाभाविक है। ऐसे में अनुवाद कार्य में अनेक चुनौतियाँ आती हैं। ये चुनौतियाँ स्थानीय शब्दों, मुहावरों, कहावतों और सामाजिक संस्कृति और धार्मिक शब्दावली के कारण और भी बढ़ जाती है। भाषाओं में सांस्कृतिक और भाषागत दूरी जितनी अधिक होगी, अनुवादगत चुनौतियों की मात्रा भी बढ़ेगी। कई बार ऐसी स्थिति भी आती है जब स्रोत भाषा की कुछ अभिव्यक्तियों का अनुवाद नहीं हो पाता। डॉ. सुरेश कुमार ने अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा में भाषा-पक्ष की कुछ सामाओं का उल्लेख किया है, जैसे-

1. शिष्ट अभिव्यक्तियों संबंधी सीमा - जैसे-"Is life worth living? It depends on the liver." इसमें liver के दो अर्थ हैं - शरीर का विशेष अंग और रहने वाला व्यक्ति। इस श्लेष को हिंदी में अनुवाद पर्याय द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता।

2. निरूपक भाषा के अंश संबंधी सीमा- जैसे- हिंदी के कुछ शब्द ऐसे हैं जो व्याकरणिक लिंग की दृष्टि से सदा स्त्री लिंग होते हैं। उदाहरण के लिए- मछली, चिड़िया।

3. संदर्भ प्रबोधक नाम संबंधी - कुछ व्यक्तिवाचक नाम भाषाओं में ऐसे होते हैं , जो उस भाषा के सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक संदर्भ का प्रबोध कराते हैं। उनका अनुवाद नहीं हो पाता। जैसे हिंदी में विभीषण, जयचन्द ऐसे ही नाम हैं।

4. सामाजिक भाषा शैलियाँ- इनका भी अनुवाद नहीं हो पाता। हिंदी की साहित्यिक रचनाओं में शिक्षित हिंदू पात्रों के मुख से संस्कृतनिष्ठ भाषा-शैली का प्रयोग करवाने की रूढ़ि रही है।

अनुवादक के सामने मूल भाषा के शब्दों के अनुकूल उपयुक्त, सटीक और समानार्थक शब्द या अभिव्यक्तियाँ लक्ष्य भाषा में खोजते समय एक बड़ी चुनौती यह रहती है कि वह उन शब्दों के पात्रगत, कथागत और संदर्भगत अर्थ को समझता है या नहीं। प्रायः लेखक अपनी रचना में पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को दिखाने के लिए अपनी भाषा के कुछ विशेष शब्द चुनता है। यदि अनुवादक इसे नहीं समझता तो वह उस शब्द के विकल्प के रूप में लक्ष्य भाषा में जो शब्द चुनेगा उसके साथ न्याय नहीं कर

पाएगा। शब्दो के इस समाजशास्त्रीय और संस्कृति संबंधी वैशिष्ट्य को समझना और उसे अच्छी तरह ग्रहण करना अनुवादक की चुनौती है। बाद में यह अनुवाद की चुनौती बन जाती है।

अनुवादक को प्रतिपाद्य संबंधी चुनौती का भी सामना करना होता है, जो सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की भिन्नता से भी बड़ी बनती है। इस चुनौती को दो भिन्न माध्यमों में देखा जा सकता है, जिसमें पहला है - भाषा संबंधी। अनुवादक के सामने एक सत्य यह है कि वर्तमान जीवन जटिलताओं से भरा है और यहीं से साहित्यकार-लेखक अथवा कवि खाद-पानी ग्रहण करता है। साहित्य की रचना करते समय रचनाकार द्वारा प्रयुक्त शब्द या तो किसी निश्चित चरित्र अथवा पात्र, परिस्थिति या कथा के बारे में आता है। कविता है तो शब्द विषय-वस्तु के लिए तथा आलोचना या निबंध है तो विचार और विश्लेषण। इन सब संदर्भों को ध्यान में रखते हुए शब्द की वास्तविक भूमिका क्या है, इसे समझना अनुवादक के लिए अनिवार्य है, तभी दूसरी भाषा में उन सारी चीजों को प्रकट करने वाले शब्द खोजेगा। इसमें शब्दकोश ही सहायता नहीं करता, बल्कि अनुवादक का उस भाषा के साहित्य संबंधी पूरा ज्ञान उसकी सहायता करता है। अनुवादक का भाषा ज्ञान कितना है और साहित्यिक ज्ञान कितना है, इसका प्रभाव तो अनुवाद में पड़ता ही है, इससे भी बड़ी बात है अनुवादक की साहित्यिक दृष्टि क्या है ? उसी के आधार पर ही अनुवादक अनुवाद के लिए प्रस्तुत पाठ को देखेगा और सामग्री के साथ बर्ताव करेगा। अनुवादक का treatment with subject material कैसा है। यह भी एक बड़ी चुनौती है।

दूसरा माध्यम है सामग्री चयन – वर्तमान उत्तर आधुनिक परिवेश बहुलतावादी है इसलिए जीवन का विस्तार भी बहुत अधिक हो गया है। जटिलताओं से आदमी का संघर्ष पिछली सभी पीड़ियों से अधिक है । यह बी सत्य है कि विज्ञान, मशीनीकरण, सूचना तकनीक इन सबका हस्तक्षेप बढ़ गया है, इसलिए सामग्री के चुनाव की चुनौती सामने आती है। रचनात्मक अभिव्यक्ति होने के नाते अनुवादक के सामने यह चुनौती है कि वह इस बहुलता को समझता है कि नहीं। अनुवाद को अब एक रचनात्मक कार्य माना जाने लगा है। इस नई मान्यता ने भी नई चुनौतियाँ ने भी नई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। विषय-वस्तु के चयन संबंधी चुनौती इन्हीं में से एक है। विशेष रूप से वर्तमान युग में अनुवाद के लिए सामग्री का चयन इस बात को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए कि आज का जीवन असंख्य संदर्भों से प्रभावित है और वह निरन्तर जटिल होता जा रहा है। यदि अनुवादक अनुवाद को गंभीर कार्य नहीं समझता तो वह बिना किसी उद्देश्य के अनुवाद के लिए सामग्री चुन लेगा। ऐसा करना अनुवाद के आदर्श के लिए घातक होगा।

अनुवादक के सामने यह चुनौती रहती है कि वह पहले यह तय करें कि अनुवाद किसके लिए और किस लिए किया जा रहा है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि अनुवादक को अपने से और अपने समाज से बाहर निकलकर सोचने की चुनौती है। उसके सामने यह चुनौती है कि वह अनुवाद के लिए कौन सी सामग्री का चयन करता है। उसके सामने यह चुनौती भी है कि वह अनुवाद करते समय मूल के साथ न्याय करता है अथवा नहीं। यहीं अनुवादक की योग्यता संबंधी चुनौती भी उठ खड़ी होती है।

अनुवाद में एक ओर अनुवादक होता है दूसरी ओर पाठक और प्रयोक्ता। अनुवाद और अनुवादक की चुनौती यह है कि वह पाठक और प्रयोक्ता के महत्व को स्वीकार करता है या नहीं। यदि कोई अनुवादक इस प्रकार का अनुवाद कर रहा है जो पाठक के अधिक काम का नहीं है अथवा जो गिने-चुने पाठकों के काम का है तो उसका अनुवाद अधिक उपयोगी नहीं हो सकते। जो अनुवाद किया जाता है वह पाठक की समझ में भी आना चाहिए और उसकी समझ और ज्ञान को बढ़ाने वाला भी होना चाहिए। अनुवाद के प्रयोक्ताओं का संबंध मुख्य रूप से विशिष्ट और पारिभाषिक शब्दावली से है। अगर हम भारत का उदाहरण ले तो भारत सरकार ने विज्ञान और तकनीकी शब्दावली आयोग बनाया है। इसी तरह व्यापार और अन्य क्षेत्रों के लिए भी विभिन्न माध्यमों से शब्दावली तैयार की गई है। इस प्रकार की शब्दावली की संख्या लाखों में है, लेकिन इस शब्दाबली का प्रयोग करने वालों की संख्या अत्यधिक कम है। देखा तो यह जा रहा है कि सरकारी कोशिशों से निर्मित शब्दावली सरकारी विभागों के कागजों, फाइलों एवं किताबों तक सीमित है। सामान्य पढ़े-लिखे लोगों में उसका प्रचार ही नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि अधिकांश पारिभाषिक शब्दावली कृत्रिम है और इतनी कठिन है कि आम आदमी की समझ में नहीं आती।

इस तरह अनुवादक के सामने यह चुनौती होती है कि वह अपने अनुवाद में ऐसी शब्दावली को कहाँ तक रखें। यहीं अनुवादक की योग्यता संबंधी चुनौती भी उठ थड़ी होती है। अनुवाद को लक्ष्य भाषा एवं स्रोत भाषा की गहरी समझ होना जरूरी है तथा उसे यह बताना आवश्यक है कि अनुवाद एक ऐसी जिम्मेदारी है, जिसे तकनीकि रूप से कुशल होने के साथ-साथ रचनात्मक प्रतिभा के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। यह अपने आप में चुनौती भरा काम है। जो अनुवादक इस चुनौती को गम्भीरता से नहीं लेते वे स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा भाषा दोनों का ही अहित करते हैं।

मणिपुरी का संस्कृत, हिंदी और अन्य भाषाओं से संवाद

देवराज

प्राचीन मणिपुरी भाषा में अग्नि, सूर्य, सोरारेन आदि की प्रशस्ति में अनेक स्तोत्र प्राप्त हैं| सोरारेन को वर्षा का देवता माना गया है, जिसका स्वरुप और चरित्र इंद्र से बहुत कुछ मिलता-जुलता है| सोरारेन को कुशल देव, अमोघवर्षी, दिव्य रूपधारी, नभ का स्वामी आदि कह कर उसका महिमा गायन किया गया है| सोरारेन जे जुडी कुछ पौराणिक कथाएँ भी प्राचीन मणिपुरी भाषा में उपलब्ध हैं| ऐसी ही एक कथा में बताया गया है कि एक बार मणिपुर अनावृष्टि की चपेट में आ गया, जिससे प्रजा बहुत दुखी हो गई| यह देख कर मणिपुर के राजकुमार, ताओथिङमाङ ने सोरारेन का आह्वान करके कहा कि यदि वह राज्य में वर्षा करने का वचन दे, तो उससे राजकुमारी का विवाह कर दिया जाएगा| यह सुन कर सोरारेन बहुत खुश हो गया और स्वर्ग से धरती पर उतर आया| अब राजकुमार के सामने समस्या आ खड़ी हुई, क्योंकि राजपरिवार में कोई राजकुमारी थी ही नहीं| अब क्या हो? कोई रास्ता न देख राजकुमार ने स्वयं राजकुमारी का वेश धारण किया और वधु के रूप में सामने उपस्थित हो गया| सोरारेन खुश-खुश उसे लेकर स्वर्ग की ओर जाने लगा| कुछ दूर जाने के बाद इम्फाल नदी आई| उसे पार करते समय वधु बने राजकुमार ने सोरारेन से हाथ छुडा कर नदी में छलांग लगा दी और राजमहल की ओर भाग गया| यह देख कर सोरारेन को बहुत गुस्सा आया| उसने रोध में इतनी वर्षा की कि मणिपुर घाटी सागर में बदल गई| बाढ़ में पातसोई की युवतियाँ बहने लगीं, जिन्हें उनम के युवक उठा-उठा कर ले जाने लगे| इस कथा की पृष्ठभूमि पर प्राचीन मणिपुरी भाषा में प्राप्त एक स्तोत्र-गीत इस प्रकार है—'नोङ्ओ चुथरो/लाङ्जिङ मतोन् थामहतलो/पातसोई नुराबी ताओथरो/उनम पाखङ् खुनजरो x x x लैरी नोङ्ली हौरो/लैखोङ् नोङ्खोङ् नेम्मो/कौरो खोङ्दुम खोङ्लकओ/मालेम लैबुरुम्मी लुमखत् लक्ओ/लाइज इथाबी नङ्थबिरक्ओ/लाइज इसाइबा नङ् खाइथाबिरक् ओ' (वर्षा बरसो, डुबा दो लाङ्जिंङ पर्वत के शिखर, बह जाएँ पातसोई गाँव की युवतियाँ, उठा लें उन्हें उनम गाँव के युवक....व्योम से पृथिवी पर उतरो, क्षितिज से आ जाओ धरा पर, भू-माँ को तर कर दो, वर्षा बरसो...)| प्राचीन और पूर्व मध्यकालीन मणिपुरी भाषा में आनुष्ठानिक रचनाओं, वीर पूजा, अलौकिक प्रेम गीतों, पौराणिक विश्वासों पर आधारित कथा-काव्यों, प्रकृति पूजा के साथ ही राजन्य वर्ग तथा सामाजिक संरचना संबंधी साहित्य का प्राधान्य है| आनुष्ठानिक साहित्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं, 'लाइहराओबा' नामक धार्मिक अनुष्ठान के अवसर पर गए जाने वाले गीत| गायन-शैली के आधार पर इनके चार वर्ग माने जाते हैं, औग्री, खेनचो, अनोइरोल और लाइरेम्मा पाओसा| इस अवसर पर पौराणिक देवता नोङ्पोक

निङ्थौ और देवी पान्थोइबी द्वारा एक श्रृंगारिक नृत्यगीत इन शब्दों में प्रस्तुत किया जाता है--- 'आ...आ....आ..../नुमिदाङ्वाइगीना मतमदा आ/नुमितना चिङया थाङ्लक्ले ए/चिङ्गीना मैना तमया थेङ/तमगीना मैनबु खोङमै नेम/ चिङ्गी पामेनन निङथिबी इ/तमगीना पामेनाना नापुङ्बी/शाबिना मांजना पाम्मु आ :/थाङ्लेनगी चेङ्लौना उबरा/ मानजगी कायदोफम्बु ताकपियुदा' (आ, संध्या के क्षणों में, □ल रहा पतंग पश्चिम दिशि, जा पहुँची पर्वताग्नि पाद-प्रदेश, रत चरण-वन्दना में, सुकुमार लाता-गुल्म, सघन तरु-पात पर्वती, आ प्रियतम प्यारे, निहारती प्रिय को, कहाँ निवास प्रियतम का)|

यह विचार का विषय है कि वैदिक संस्कृत में प्राप्त स्तोत्र और मणिपुरी के प्राचीन स्तोत्र शैली और संवेदना के धरातल पर जिस निकटता का बोध कराते हैं, वह कहीं किसी-न-किसी कालखंड में मणिपुरी समाज तथा आर्यों के संपर्क का संकेत तो नहीं है| इस संकेत की परीक्षा के लिए हमें मणिपुरी संस्कृति के तीन अध्येताओं के विचार जानने चाहिए| लाइरेनमयुम इबुङोहल सिंह अपने ग्रन्थ, 'इंट्रोडक्शन टू मणिपुर' में स्वीकार करते हैं कि प्राचीन काल में कामरूप, कछार और त्रिपुरा से आए आर्यों की एक बस्ती मणिपुर और म्यांमार में थी (पृ. 12)| इसी पुस्तक में वे आगे कहते हैं कि वैदिक काल में अनेक आर्य मणिपुर आए और यहाँ के मूल निवासियों के साथ घुलमिल गए| यह भी कहना होगा कि वे भारत में जाति-व्यवस्था के प्रारम्भ के पहले आए थे (पृ. 16)| मणिपुरी इतिहास और संस्कृति के दूसरे विख्यात अध्येता एलाङ्बम नीलकांत सिंह ने अपनी पुस्तक, 'आस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन कल्चर' में कहा है कि मणिपुरी लोगों के लिए महाभारत महाकाव्य का विशेष महत्त्व यह है कि मणिपुर का राज-परिवार पाण्डव अर्जुन और मणिपुरी राजकुमारी चित्रांगदा के पुत्र, बभ्रुवाहन से सम्बंधित है| मणिपुरियों के लिए अर्जुन और चित्रांगदा का विवाह बहुत महत्वपूर्ण परिघटना है (पृ. 83)| प्राचीन मणिपुरी साहित्य के इतिहास की खोज करने वाले प्रतिष्ठित विद्वान राजकुमार झलजीत सिंह तीसरे ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने आर्यों और मणिपुर के सम्बन्ध पर गहराई से विचार किया है| अपने ग्रन्थ, 'ए हिस्ट्री ऑफ मणिपुरी लिटरेचर' में प्राचीन साहित्य पर विचार करते हुए उन्होंने कहा है कि एक के बाद एक आर्य प्रब्रजकों के समूह मिथिला से आगे बढ़ कर उत्तर बंगाल को पार करते हुए सिलेट पहुँचे और सूरमा घाटी के नाम से प्रसिद्द बराक घाटी पार करके वर्त्तमान मणिपुर की सीमा तक आए| इसके बाद वे जाने-पहचाने पहाड़ीमार्ग से मणिपुर घाटी पहुँचे| उनमें से अनेक यहीं बस गए| प्राकृत बोलने वाले आर्यों का पहला जत्था पहली अथवा दूसरी शती ईसवी पूर्व मणिपुर पहुँचा था (पृ. 16)| इन तीनों विद्वानों के विचारों को बिना किसी टिप्पणी के प्रस्तुत करने का उद्देश्य पाठकों को मणिपुरी भाषा, साहित्य और संस्कृति संबंधी विमर्श की उस दूसरी धारा से सीधे-सीधे परिचित कराना है, जो इन्हीं विषयों पर लगभग एक-डेढ़ शती से चली आ रही अंग्रेज विचारकों और यूरोपीय प्रभाव से निर्मित धारा के समान्तर पिछले लगभग पचास साल में अस्तित्व में आई है और आज उसके समक्ष चुनौती

बन गई है| मणिपुरी भाषा के विकास के इतिहास का मध्य और आधुनिक काल विवादों के घेरे में नहीं है| सबसे अधिक अपरिचित और विवादग्रस्त कालखंड प्राचीन काल ही है और आश्चर्य का विषय है कि उसके विषय में टी. सी. हडसन ने 'द मैतेज़' पुस्तक में और जी. ए. जार्ज ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में जो कुछ कह दिया है, उससे अलग हट कर सोचने का कार्य मणिपुरी भाषा के अध्येता दीर्घ काल तक नहीं कर पाए| मणिपुरी भाषा के बारे में अंग्रेज और पश्चिमी लेखकों के बाद भारतीय विद्वान सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने सबसे पहले सोचना शुरू किया था| उन्होंने उसे तिब्बत-बर्मी भाषा परिवार की शाखा, 'कुकी-चीन' के अंतर्गत रखते हुए भी कुछ ऐसे संकेत कर दिए थे, जो भारतेतर शोधकर्ताओं के निष्कर्षों से मेल नहीं खाते थे| स्वयं मणिपुरी चिंतकों द्वारा अपनी भाषा के अध्ययन का प्रारम्भ काफी बाद में युमजाओ सिंह (मैतैलोन व्याकरण), नंदलाल शर्मा (मैतैलोन व्याकरण), कालाचाँद शास्त्री (व्याकरण कौमुदी), द्विजमणिदेव शर्मा (मणिपुरी व्याकरण) आदि के माध्यम से हुआ| यह एक अध्ययन-परम्परा की शुरुआत भर ही थी, इसमें किसी प्रकार की गहराई और गंभीरता का समावेश नहीं था|

भाषिक अध्ययन की मज़बूत परम्परा उच्च शिक्षा के लिए मणिपुर के बाहर जाकर शिक्षा ग्रहण करने वाले अध्याताओं द्वारा स्थापित की गई| शीघ्र ही इस परम्परा में दो उप-धाराएँ दिखाई देने लगीं| एक में वे अध्येता हैं, जो मणिपुरी भाषा को तिब्बत-बर्मी भाषा परिवार की कुकी-चिन शाखा का सदस्य मानते हैं, उसके विकास को मणिपुर की किसी बोली से जोडते हैं और उसकी समग्र भाषिक संस्कृति के निर्माण के लिए स्थानीय बोलियों सहित केवल मंगोलाइड भाषाओं व दक्षिण-पूर्वी एशियाई समाजों को उत्तरदाई मानते हैं| इस धारा के अध्येताओं के मत में मणिपुरी भाषा में प्रारम्भ से अब तक संस्कृत आदि भारोपीय भाषाओं के जो शब्द समाविष्ट हुए हैं, उन सबके मूल में पुराने समय में मणिपुरी समाज का 'आर्यीकरण' (आर्यनाइजेशन), हिन्दुईकरण (हिन्दुआइजेशन), आधुनिक कालीन उपनिवेशवाद तथा इनके चलते किया जाने वाला मणिपुरी भाषा का 'संस्कृतनिष्ठीकरण' (संस्कृताजेशन) है| यह एक प्रकार से मणिपुरी भाषा की भाषिक-संस्कृति को भारत के साथ मणिपुरी समाज के पारंपरिक सांस्कृतिक संपर्क और भारोपीय भाषाओं के साथ उसके स्वाभाविक परिचय के परिप्रेक्ष्य से काट कर देखने वाली दृष्टि है, जिसके मूल में विद्यमान कारणों की तलाश की जानी चाहिए|

भाषाई अध्ययन की दूसरी धारा में वे अध्येता हैं, जो मणिपुरी भाषा की भाषिक-वर्गीयता के सम्बन्ध में पहली धारा के अध्येताओं से सहमत होते हुए भी यह मानते हैं कि मणिपुरी भाषा की भाषिक-संस्कृति के निर्माण में आर्यों सहित समय-समय पर भारत के विभिन्न अंचलों से आने वाले प्रब्रजक-समूहों की सामाजिक परम्पराओं तथा उनकी भाषाओं (प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत बंगला, असमीया आदि) की भी निश्चित भूमिका है| मणिपुर के इतिहास के सहारे इसका एक ठोस प्रमाण राजकुमार झलजीत सिंह देते हैं| वे 'न्यू लाइट्स इन टू द

ग्लोरियस हेरिटेज ऑफ मणिपुर, भाग-एक' में प्रकाशित अपने एक लेख में ब्राह्मण प्रब्रजक-समूहों के आगमन की ही बात नहीं करते, बल्कि महाराज गरीब नवाज़ द्वारा उनके स्वागत तथा मणिपुर के समाज की बहुवचनीयता व बौद्धिक वातावरण के निर्माण में उनकी भूमिका को भी स्वीकार करते हैं (पृ. 220)| इस दूसरी धारा से जुड़े अध्येता उपनिवेशवाद की भूमिका पर भी सोचते हैं, किन्तु उनके निष्कर्ष पहली धारा से कोई मेल नहीं खाते| इसका कारण यह है कि वे लोग उपनिवेशवाद के राजनैतिक और सांस्कृतिक चरित्र तथा उसके सम्पूर्ण एशिया पर पडने वाले ऐतिहासक प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में मणिपुरी समाज, संस्कृति और भाषा के विकास को देखना चाहते हैं| इस बिंदु पर पहुँच कर उन्हें लगता है कि (1) उपनिवेशवाद ने मणिपुर (या पूर्वोत्तर के किसी भी भाग) को जीवित अजायबघर बना डाला है, अतः (2) मणिपुर के अतीत का मूलतः रूढ़ाग्रह से मुक्त और अतिवाद रहित संगत पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए, जिसमें नृ-वैज्ञानिक (पुरातात्विक), जातीय-ऐतिहासिक और राजनैतिक-आर्थिक ज्ञानानुभवों का पुनर्निर्धारण हो, ताकि मणिपुर की वर्त्तमान और उभरती हुई ई-पीढ़ी को सही दिशा मिल सके| और (3) पुनर्मूल्यांकन से उपनिवेशवादी अवधारणा से मुक्ति मलेगी और वर्त्तमान व अतीत के मध्य सही सम्बन्ध का निर्माण होगा| भाषा संबंधी विमर्श की विश्वसनीयता और किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए इस धारा की भी परीक्षा की जानी चाहिए|

मणिपुरी भाषा के प्राचीन काल को समझने के क्रम में जो प्रसंग हमारे समक्ष उपस्थित है उसका कालखंड प्रथम शताब्दी ई. के आसपास से सन् 1730 के लगभग तक माना जाता है| इस अवधि में 'नुमित काप्पा', 'खोङ्जोमनुपी नोङ्कारोल', 'नाओथिङ्खोङ फम्बाल काबा', 'पोइरैतोन खुन्थोकपा', 'खोङ्जोङ्नुबी नोङारोन', 'पोम्बी लुवाओबा', 'चैनारोल', 'थवानमिचाङ खेनजाङ्लोन', 'लोइयाम्बा शिल-येन', 'फौ-ओइबी वारोन', 'लैथक लैखारोन', 'निङ्थौरोन लम्बुबा', 'पानथोइबी खोङ्न', 'खागेम्बा युमलेप', 'लाइरिक-येङ्बम लोन', 'लैरोन', 'दाता कर्ण' आदि पुस्तकों की रचना की गई| इस अवधि (आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध) से सम्बन्ध रखने वाला एक ताम्र-लेख (कॉपर प्लेट) डब्ल्यू. युमजाओ सिंह द्वारा खोज निकाला गया और इसी अवधि में राजलेख (राजाओं और राज्य संबंधी कुछ अति महत्वपूर्ण घटनाओं का विवरण) ग्रन्थ, 'चैथारोल कुम्बाबा' (जिसे प्रारम्भ में 'कुम्बाबा' ही कहा जाता था और जिसके लेखन का प्रारम्भ आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ से माने जाने पर बल दिया जाता है) भी मिलता है| इस सम्पूर्ण सामग्री का साहित्यिक मूल्यांकन अलग विचार का विषय है, किन्तु जहाँ तक इसके भाषाई पक्ष का सन्दर्भ है, उसमें स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि संदर्भित ग्रंथों की भाषा के समग्र ाँचे में तत्कालीन स्थानीय भाषाओं (जिनमें उस काल की जनजातीय भाषाएँ भी सम्मिलित हैं) और दक्षिण-पूर्वी भूगोल से सम्बन्ध रखने वाली भाषाओं के साथ ही प्राकृत, अपभ्रंश के विविध रूपों, संस्कृत, बंगला आदि की

शब्द-संपदा की निश्चित भूमिका है। इस तथ्य को स्वीकार करके ही मणिपुरी भाषा के प्राचीन कालखण्ड के विकास-क्रम तथा उसकी भाषिक संस्कृति को समझा जा सकता है।

मणिपुरी भाषा पर केंद्रित जो शोध-कार्य मणिपुरी, हिंदी और अंगरेजी में हुआ है, उसके आधार पर इस भाषा के विकास के सम्बन्ध में तीन मत सामने आते हैं। पहले मत के अनुसार एक समय मणिपुर घाटी सात लघु राज्यों में विभक्त थी और उन पर मीतै जाति के सात वंशों (खाबा, चेङ्लै, लुवाङ्, खुमन, मोइराङ्, अङोम, निङ्थौजा) का शासन था। उन सातों वंशों और राज्यों की प्रजा द्वारा जिस अविकसित भाषा का व्यवहार संपर्क-भाषा के रूप में किया जाता होगा, वही आगे चल कर मणिपुरी भाषा (जिसे मीतै जाति की भाषा होने के कारण प्रारम्भ में मीतै लोन/लोल कहा जाता था) के रूप में विकसित हुई। इस मत का प्रतिपादन सी-एच. मनिहार सिंह ने अपनी पुस्तक, 'ए हिस्ट्री ऑफ मणिपुरी लिटरेचर' में किया है। इससे थोड़ा-सा भिन्न मत राजकुमार झलजीत सिंह ने व्यक्त किया है। उनका मानना है कि सातों मीतै वंशों में निङ्थौजा वंश सर्वाधिक शक्तिशाली था, जिसकी राजधानी इम्फाल थी। इतिहास-क्रम में उसने अन्य सभी वंशों को अपने अधीन कर लिया और पूरी मणिपुर घाटी पर उसका अधिकार हो गया। उसके प्रभाव के कारण उसी की तत्कालीन अविकसित भाषा (जो इम्फाल और उसके आस-पास बोली जाती थी) मणिपुर की संपर्क-भाषा तथा कालान्तर में मानक मणिपुरी के रूप में विकसित हुई। यह मत झलजीत सिंह की पुस्तक, ए हिस्ट्री ऑफ मणिपुरी लिटरेचर के प्रथम भाग में उपलब्ध है। मणिपुरी भाषा के सम्बन्ध में तीसरा मत इबोहल सिंह काङ्जम ने अपनी पुस्तक, 'हिंदी-मणिपुरी क्रिया संरचना' में प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि वर्त्तमान मणिपुरी का विकास 'चेङ्लै' नामक तत्कालीन अविकसित भाषा से हुआ है। यह 'चेङ्लै' नामक वंश की व्यवहार-भाषा थी। इस वंश ने निङ्थौजा वंश के बहुत पहले इम्फाल (कङ्ला) को अपनी राजधानी बनाया था, अतः उसी की व्यवहार-भाषा का कालान्तर में मणिपुरी भाषा के रूप में विकास मानना संगत है। इस आलेख के लेखक ने इबोहल सिंह की पुस्तक छपने के बहुत पहले यह मत मणिपुरी भाषा के गंभीर अध्येता अशाङ्बम मीनकेतन सिंह से उनके भाषणों में कई बार सुना था, अतः यह मानने का आधार है कि इस तीसरे मत के समर्थन में भी एकाधिक भाषा-विचारक रहे हैं। मणिपुरी भाषा के विकास के सम्बन्ध में इन तीनों मतों के प्रस्तुतकर्ता इस तथ्य पर एकमत हैं कि भाषा के विकास की यह प्रक्रिया ईसा की प्रथम शताब्दी से सातवीं शताब्दी के बीच संपन्न हुई। स्मरणीय है कि मणिपुरी भाषा की लिपि, 'मीतै मयेक' के पहले प्रयोग के प्रमाण भी सातवीं शताब्दी से ही सम्बन्ध रखते हैं। मणिपुरी भाषा, लिपि और संस्कृति के अध्ययन-क्षेत्र में किंवदंती पुरुष बन चुके एन. खेलचंद्र सिंह (अरिबा मणिपुरी साहित्यगी इतिहास) और उनके बाद इस क्षेत्र में कार्य करने वाले राजकुमार झलजीत सिंह, मनिहार सिंह, मीनकेतन सिंह, इबोहल सिंह काङ्जम, सापम तोम्बा सिंह आदि सभी यह मानते हैं कि 'मीतै मयेक' का मूल-

स्रोत 'ब्राह्मी लिपि' है तथा सातवीं शताब्दी में इसका प्रयोग किया जाने लगा था| इसके प्रमाण के रूप में झलजीत सिंह ने ए हिस्ट्री ऑफ मणिपुरी लिटरेचर के प्रथम भाग के पाँचवें पृष्ठ पर सातवीं शताब्दी के एक सिक्के का उल्लेख किया है, जिस पर मीतै मयेक का प्रयोग उपलब्ध है| हिंदी में हुए शोध-कार्य में मणिपुरी भाषा की भाषिक-प्रकृति की गवेषणा भी प्राप्त होती है| इस सम्बन्ध में अरिबम कृष्णमोहन शर्मा ने सबसे पहले ध्यान दिया और अपनी पुस्तक, 'हिंदी और मणिपुरी परसर्गों का तुलनात्मक अध्ययन' में बताया कि "मणिपुरी भाषा अयोगात्मक भाषा है| इसके स्वरुप एक-दूसरे से नहीं जुडते और शब्द रूपों में निपात आदि से व्याकरणिक अर्थ प्रकट होते हैं| मणिपुरी की संज्ञाओं में भेद नहीं होता, बहुवचन बनाने के लिए 'शिङ्' जोड़ा जाता है या निपात, 'मयाम' (बहुत) का योग किया जाता है" (पृ. 02)| इसी प्रकार यह भी उल्लेखनीय है कि हिंदी के माध्यम से शोध-कार्य करने वाले इबोहल सिंह काङ्जम ने मणिपुरी भाषा के विकास का इतिहास अपनी पुस्तक, 'हिंदी-मणिपुरी क्रिया संरचना' के पृष्ठ इकतीस पर निम्नानुसार दिया है---

(1) प्राचीन काल (प्रथम शताब्दी ई. से 1730 ई. तक)

(2) मध्य काल (1730 ई. से 1890 ई. तक)

(3) आधुनिक काल (1890 ई. से अब तक)

यह काल-खण्ड निर्धारण मणिपुरी भाषा के अध्ययन से जुड़े सभी भाषा वैज्ञानिकों को मान्य है| उन्होंने ही भाषिक विकासेतिहास के मध्य-काल पर विचार करते हुए मणिपुरी भाषा के ताने-बाने में कुछ ध्वनियों के समावेश का विवरण, 'मणिपुर : भाषा और संस्कृति' शीर्षक पुस्तक में छपे अपने लेख (मणिपुरी भाषा का विकास और विस्तार) में दिया है, जिसमें वे कहते हैं, "मध्यकाल में मणिपुरी भाषा का पर्याप्त विकास हुआ|..... अपने देशज शब्दों के साथ-साथ मणिपुरी में संस्कृत तथा बंगला के शब्दों को अधिक मात्रा में अपनाया जाने लगा था| इन भाषाओं के प्रभाव से कुछ नवीन सघोष ध्वनियों, जैसे—ग्, घ्, ज्, झ्, द्, ध्, ब्, भ्, र् आदि का आगमन हुआ था" (पृ. 04)| भाषा वैज्ञानिकों ने मध्यकालीन मणिपुरी के दो रूपों की ओर विशेष ध्यान दिया है| भाषा का एक वह रूप, जिसमें देशज शब्दों का बाहुल्य था| इसमें इतिहास और राजनीति तथा कभी-कभी धार्मिक विवादों में प्राचीन मणिपुरी धार्मिक प्रतीकों को महत्त्व देने संबंधी विषयों पर ग्रन्थ-रचना को प्राथमिकता दी जाती थी| इस काल के 'समजोक ङम्बा' (जिसमें महाराज गरीब निवाज़ के युद्ध कौशल तथा तत्कालीन म्याँमार के समजोक नामक राज्य पर उनकी विजय की गाथा है), 'तकशेन ङम्बा' (जिसमें म्याँमार और त्रिपुरा द्वारा मणिपुर पर एक साथ किया गया आक्रमण तथा दोनों को गरीब निवाज़ द्वारा पराजित करने की गाथा है), 'चोथे थङ्वाइ पाखङ्बा (जिसमें मोइराङ के युवराज के पुत्र और राज-सेवा में लगे एक साधारण से अधकारी की पुत्री, सुनुलेम्बी से सम्बंधित प्रेम, साहस, पातिव्रत्य तथा करुणा की गाथा है), 'सनामही लइकन'

(जिसमें रामानंदी प्रभाव में सनामही नामक प्राचीन मणिपुरी देवता की मूर्ति खंडित करने और उसकी पुनर्प्रतिष्ठा की कथा है) आदि इसके उदाहरण हैं|

इस काल में मणिपुरी भाषा का दूसरा वह रूप विकसित हुआ, जिसमें रामायण और महाभारत महाकाव्यों तथा भगवतगीता के पाठों को ग्रहण करके उनका मणिपुरी भाषा में पुनर्कथन या रूपांतरण हुआ और अधिकांशत: वैष्णव भक्ति आंदोलन से सम्बंधित साहित्य की रचना हुई| भाषा के इसी रूप में सघोष ध्वनियों का विशेष प्रयोग और संस्कृत, बंगला आदि से ग्रहीत शब्दों का बाहुल्य था| शब्दों की उच्चारण-शैली पर बंगला की उच्चारण-शैली के प्रभाव का भी यही काल है| मध्यकाल के प्रारम्भ-बिंदु पर सन् 1725 के लगभग गंगादास सेन के बंगला महाभारत के आधार पर 'परीक्षित' काव्य का मणिपुरी रूपांतर किया गया था| इसके रूपान्तरकर्ता के रूप में महाराज गरीब निवाज़ और अङोम गोपी, दोनों का ही नाम लिया जाता है| इसी काल में महाराज गरीब निवाज़ के आदेश से क्षेमा सिंह ने प्रेमानंद खुमनथेम्बा, मुकुंदराम मयोइसना, लक्ष्मीनारायण इरोइबा, रामचरण नोङ्थोनबा और लक्ष्मीनारायण साइखुबा के माध्यम से बंगला की 'कृत्तिवासी रामायण' को आधार बना कर मणिपुरी रामायण (जिसे वर्त्तमान में मणिपुरिया रामायण कहा जाता है) तैयार करवाई| सन् 1737 के लगभग हुए इस पाठ-ग्रहण में कृत्तिवासी रामायण के कुछ प्रसंग छोड़ दिए गए हैं| मणिपुरी भाषा में रूपांतरण अथवा पुनर्कथन के लिए रामायण और महाभारत आदि को संस्कृत के स्थान पर बंगला से ग्रहण किए जाने का कारण यह है कि उस काल में मणिपुर में संस्कृत की विशेषज्ञता (ब्राह्मण वर्ग के कुछ लोगों को छोड़ कर) उतनी नहीं थी, जबकि तत्कालीन अध्येता बंगला से अच्छी तरह परिचित हो गए थे| इससे मणिपुरी और बंगला तथा उस बहाने संस्कृत से मणिपुरी भाषा के संपर्क-सम्बन्ध का अनुमान किया जा सकता है| इस काल में वैष्णवी आस्था से प्रभावित ग्रंथों में 'लक्ष्मी चरित', 'वीरबाहु तुबा', 'ध्रुव चरित', 'राम नोङ्बा' (या राम स्वर्गारोहण), 'वीरता पर्व', 'सनामानिक', 'एकादश पांचाली' आदि का उल्लेख किया जा सकता है| इस काल से सम्बंधित एक और ग्रन्थ है, 'चिङ्थङ् खोम्बा गंगा चत्पा'| नवचन्द्र, हरिचरण और माधवराम द्वारा लिखा गया यह ग्रन्थ मणिपुरी भाषा का प्रथम यात्रावृत्त है, जिसमें महाराज जयसिंह की वृन्दावन यात्रा का विवरण है| मणिपुर के मध्यकालीन सांस्कृतिक और भाषाई परिवेश में जो परिवर्तन दिखाई देता है और उसमें इन सभी ग्रंथों की जो भूमिका है, उसके लिए पुन: प्रब्रजन पर ध्यान दिया जाना चाहिए, जो निश्चित रूप से इस कालखंड में प्राचीन काल की अपेक्षा बढ़ गया था और भारत के उन अंचलों की संख्या भी अधिक हो गई थी, जहाँ से ये प्रब्रजक आते थे| राजकुमार झलजीत सिंह अपनी पुस्तक, 'ए हिस्ट्री ऑफ मणिपुरी लिटरेचर' के दूसरे भाग में स्पष्ट संकेत करते हैं कि सन् 1652 तक ऊपरी म्यानमार की ओर से प्रब्रजन थम गया था, जबकि शेष भारत से उसकी गति बनी रही| यदि म्यानमार की ओर से होने वाले प्रब्रजन के पूरी तरह थम जाने की बात पर

विश्वास न भी किया जाए, तब भी उस काल की राजनैतिक स्थितियों तथा तत्कालीन म्यानमार के विभिन्न राज्यों से निरंतर होने वाले युद्धों को देखते हुए यह मानना स्वाभाविक लगता है कि उस दिशा से होने वाले प्रब्रजन में भारी कमी अवश्य आई होगी| झलजीत सिंह के दावे के पीछे संभवत: यह सिद्ध करने की भावना है कि प्रब्रजन के थम जाने या कम हो जाने के कारण दक्षिण-पूर्वी एशियाई क्षेत्र की भाषाओं से मणिपुरी भाषा की ग्रहणशीलता कम हुई, किन्तु इस प्रकार के किसी अनुमान पर विश्वास करने के पूर्व तत्कालीन राजनैतिक और आर्थिक स्थिति पर भी विचार किया जाना चाहिए| मणिपुरी भाषा के विकास के मध्यकाल में महाराज गरीब निवाज़ ने सन् 1739 में म्यानमार पर विजय प्राप्त की थी और वे मांडले के निकट सगाइङ नगर तक जा पहुँचे थे, जहाँ उन्होंने अपनी बर्मा-विजय की स्मृति में कौमुदोव पगोडा के लकड़ी के द्वार पर अपनी तलवार से तीन चिन्ह बनाए थे| राजनीतिक घटनाक्रम को लिपिबद्ध करने वाले शाही इतिवृत्तांत-ग्रन्थ, 'निङ्थौरोल लम्बुबा' (चौथारोल कुम्बाबा से भिन्न) में दर्ज है कि उन्होंने मणिपुर की सीमाएँ उस नगर तक घोषित की थीं| इसके बाद सन् 1764 में बर्मा ने मणिपुर पर अधकार कर लिया, जो सन् 1767 तक बना रहा| आर्थिक मोर्चे पर मणिपुर के व्यापारियों का ऊपरी बर्मा, सुरमा घाटी और त्रिपुरा में आना-जाना बराबर लगा रहता था| यह आवागमन जाड़े की ऋतु में काफी बढ़ जाता था| मणिपुरी व्यापारी कारोबार करने के लिए बर्मा-चीन सीमा तक जाते थे| पूर्वी भारत से आने वाले व्यापारियों के समान ही न्यूनाधिक संख्या में बर्मा की दिशा से भी व्यापारी इस राज्य में आते थे| मणिपुर में कागज़ बनाए जाने की शुरुआत होने के पहले मध्यकाल के प्रारम्भ में चीन के व्यापारी अन्य सामानों के साथ कागज़ लेकर यहाँ आते थे| तभी से कागज़ के लिए प्रयुक्त चीनी भाषा का 'चे' शब्द मणिपुरी में प्रचलित हुआ| इन सभी तथ्यों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रब्रजन की गति पर प्रतिकूल प्रभाव पडने के बावजूद बर्मा, चीन और दक्षिण-पूर्व क्षेत्र की भाषाओं के साथ मणिपुरी का संवाद बराबर बना रहा|

तत्कालीन भारतीय भाषाओं के साथ मणिपुरी भाषा के तेज़ी से बढ़ते संपर्क की दृष्टि से झलजीत सिंह का दूसरा अनुमान कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, जिसमें वे कहते हैं कि भारत के विभिन्न अंचलों से आने वाले प्रब्रजक खाली हाथ नहीं आए थे, बल्कि उनके साथ उनकी मातृभाषाएँ, परम्पराएँ और साहित्यिक पृष्ठभूमि थी, जिसने भाषा और संस्कृति को प्रभावित किया| इससे भी आगे जाकर उनका मत है कि जब इन प्रब्रजक समूहों की संतानें पूरी तरह मणिपुरी हो गईं, तब उनकी लोककथाओं, गाथाओं, मातृभाषा आदि ने मणिपुरी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाया (पृ. 07)| यह सीधे-सीधे मणिपुरी और भारोपीय भाषाओं के बीच निर्मित गहन संवाद की स्वीकृति है| इस काल के ग्रंथों की भाषा का अध्ययन करने से यह तथ्य भी सामने आता है कि तत्कालीन लेखकों ने भाषाई ग्रहणशीलता की दृष्टि से उदार चरित्र का परिचय दिया| संस्कृत, बंगला, असमीया, त्रिपुरी के

साथ-साथ बर्मी और आसपास की अन्य भाषाओं को सीखने तथा उनसे शब्द-संपदा लेने में संकोच न करके उन्होंने मणिपुरी को एक समृद्ध भाषा बनाने की गहन साधना की|

मध्यकाल में वैष्णव धर्म-धारा (चैतन्य महाप्रभु, विष्णु स्वामी, निम्बार्क और असमीया वैष्णव चेतना प्रेरित) के प्रभाव से मणिपुरी भाषा का संपर्क ब्रजबुलि से हुआ| यह एक मिश्रित भाषा है, जिसकी मूल भित्ति मैथिली है और उसमें बंगला, असमीया, ओडिया, पश्चिमी हिंदी आदि की शब्द-संपदा की भूमिका है| इस भाषा की उत्पत्ति का मूल कारण भी राधा-कृष्ण की लीलाओं को प्रकट करने वाले पदों की रचना है, जिन्हें ऐतिहासिक दृष्टि से मैथिली कवि विद्यापति की गीतियों से प्रेरित होकर बंगाल के वैष्णव-भक्त कवियों ने रचना प्रारम्भ किया था| राधा-कृष्ण की लीला-भूमि ब्रज होने के कारण इन पदों की मिश्रित या संकर भाषा को ब्रजबुलि कहा गया| इस भाषा के अन्य नाम ब्रजाली, ब्रजावली, ब्रजबोली भी हैं, किन्तु अब सभी विद्वान इसके 'ब्रजबुलि' नाम पर सहमत हैं| 'ब्रजबुलि की भाव-संपदा' पुस्तक में अरुण होता बंगला (यशोराज खान, वासुदेव घोष, रामानंद बासु, वृन्दावन दास, लोचन दस, बलराम दास, राधामोहन ठाकुर आदि), ओडिया (राय रामानंद, चम्पति राय, माधवी दास, देवदुर्लभ दस, रसानंद, श्यामसुन्दर भंज आदि), असमीया (शंकरदेव, माधवदेव, अनंत कन्दली, गोपालदेव, रामचरण ठाकुर आदि) के ब्रजबुलि भक्त-कवियों की रचनाओं की भाषा का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इन सभी अंचलों के ब्रजबुलि कवियों की प्रवृत्ति इस भाषा में अपनी-अपनी भाषाओं के शब्दों को अधिक से अधिक मिलाने की रही है (पृ. 45)| इस तथ्य से हमें जो दिशा मिलती है, वह यह कि मणिपुर में मिथिला अंचल, बंगाल, ओडिशा, असम आदि सभी जगहों से ब्रजबुलि का आगमन हुआ, अतः उसे एक साथ अनेक भाषाओं के शब्दों के संपर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ| इसका मध्यकालीन मणिपुरी भाषा के विकास पर यथेष्ठ भाषा वैज्ञानिक प्रभाव पड़ा| मणिपुर के वैष्णव भक्त कवियों में वहाँ के अनेक शासकों के नाम लिए जाते हैं, जैसे—महाराज कियाम्बा, कुलचन्द्र, गंभीर सिंह, गरीब निवाज़, चंद्रकीर्ति, भाग्यचंद्र, चौरजीत, जदु सिंह, नर सिंह आदि| स्त्री भक्तों में महाराज भाग्यचंद्र की पुत्री, सिज लैरोबी बिम्बावती मंजुरी 'देवप्रिया' (जिन्हें मणिपुरी मीरा भी कहा जाता है) का नाम आता है| साधारण लोगों में याइमोम थानिल सिंह 'संगीतरत्न', शोराम अङाहल सिंह आदि की गणना की जाती है| इसके अतिरिक्त मणिपुर में विभिन्न धार्मिक अवसरों पर संकीर्तन हेतु गायन दलों की परम्परा भी विकसित हुई| इन गायन दलों को 'पाला' कहा जाता है और इनका वर्गीकरण 'सना पाला' (राजा का संकीर्तन दल), 'योगी पाला' (वानप्रस्थियों/संन्यासियों का संकीर्तन दल), 'नुपी पाला' (स्त्रियों का संकीर्तन दल) आदि के रूप में किया जाता है| इन राधा-कृष्ण भक्त कवियों के नाम से जो पद प्राप्त होते हैं, उन्हें देख कर मणिपुर में प्रचलित ब्रजबुलि के स्वरुप का अनुमान किया जा सकता है| उदाहरण के लिए एक पद बिम्बावती मंजुरी के नाम से मिलता है---'के बोले करुनामय अवतार/हा हा श्री गौरांग विधु रसराज/मोय केहनु

ना होयलो दया/नन्द सुत प्रधान्या शिला मुखब जयमृदु बंशीधारी/जीव निस्तार हेतु नोदिया विहारे/मोय केनु होयलो दया'| शोराम अङाहल सिंह के नाम से एक पद इस प्रकार मिलता है---'प्रिय सजनी कमने साहिबो प्राण/प्रान्सखी बिशाखे किहेतु जीबन राखिबो/गुणि गुणि आमार प्राण धरिते नारे/बन्धुर लागिमा प्राण सहिते नारे'| इसी प्रकार एक पद भाग्यचंद्र महाराज के शासनकाल में किसी अज्ञात भक्त कवि का मिलता है--- 'जय जय राधे कृष्ण गोविन्द श्याम/संगे रस रंगे निकुंजे मंदिरे/मदन मोहन मोहिनी धानी राधे/जय जय राधे गोविन्द देव/श्रीला भाग्यचन्द्र नृपवर सेवा'| इन पदों का गायन वैष्णव मंदिरों में नियमित रूप से किया जाता था| याओशङ (उत्तर भारत के होलिकोत्सव के समान रंगोत्सव, जिससे चैतन्य महाप्रभु के जन्म संबंधी घटना जुडी है) के अवसर पर गाँव-गाँव से भिन्न-भिन्न होलीपाला संकीर्तन करते हुए श्रीगोविन्दजी के मन्दिर आते थे और हलंकार (होलिकोत्सव का पाँचवाँ दिन) के दिन श्री विजयगोविंदजी के मन्दिर के विशाल प्रांगण में अनेक होलीपाला असंख्य वैष्णव-जनों के बीच संकीर्तन करते थे| रथ-यात्रा के दिन भक्त-जन और अनेक संकीर्तन पाला समूहों में मार्गों पर संकीर्तन करते हुए चलते थे| यहाँ तक कि वैष्णव-जनों के जीवन-संस्कारों (जिनमें मृत्यु संस्कार भी शामिल है) के प्रसंग में चैतन्य महाप्रभु के जीवन के विभिन्न चरणों पर आधारित पद और कथा-गायन होता था| इससे अनुमान किया जा सकता है कि मध्यकाल में मणिपुरी और ब्रजबुलि के समक्ष पारस्परिक निकटता के अवसर कितने सहज रूप में विद्यमान थे|

आधुनिक काल में मणिपुरी भाषा के विकास को रेखांकित करने के लिए कुछ मूल सन्दर्भों को समझना होगा, जैसे पहला- इस बात पर ध्यान देना होगा कि मध्यकाल में धार्मिक अवसरों पर बंगला और ब्रजबुलि में किए जाने वाले गायन को मणिपुरी में किए जाने का आंदोलन चला| यह नवजागरण काल के कवियों द्वारा जगाई गई स्वभाषा-चेतना का प्रभाव था| इससे धार्मिक और सांस्कृतिक कर्मकांड में मणिपुरी की प्रतिष्ठा हुई और सहज रूप से ब्रजबुलि और बंगला की कुछ शब्दावली आधुनिक मणिपुरी का हिस्सा बन गई| इस परिवर्तन के कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं, जैसे –

(1) प्रार्थना का एक पद :

'कुँजगी मबुडो मबेम्मा/चानबियू चानबियू कुँजगी...../तोल्लबी ननाइनी खनबिदुना अनीना/ननाइना पामजरबा नुङशिजबा /चरण गी नाकता थमबियू कुँजगी...../खङजदे हइजदे लैसि लैथोनजबा/अनिना पेनबिनबा निकुँज मनुङगी/अनिगी थौगल ददी पामजै/पिनबियू कुँजगी...../हे इबुडो चुराना लैतेङबा फुइना नोङहौ ङमजबा/रासेश्वरी ना ओइदा लेपलिबा /मूर्ति दो पामजै उजबा कुँजगी.....'

(2) विवाह के अवसर के दो अंश :

(क) 'येङङू इता राधा श्याम गी /फजबा रूप से येङजहोरलाओ येङङू..../येङङू इता चान्नरबी येङलिमखै पेनबा नाइदे/येङजहौरलाओ/श्यामगी कोकता वाहोङगी चुडा /राधी गी कोकता सनागी झापा-चुडा/मपा अनी असे लङलिबसे मानदरा चुमताङ खनबा/श्यामना हेनदे रादा वात्ते /येङलिबा मखै /पेनबा नाय़दे येङजहौरोलाओ।/येङङू इता.....'

(ख) '-जय ओइरे लाओनरकले/ नदियादा निल्ले/पोकपिररे घौरांगना /सचिगी शङगाइदा/-फालगुन थागी पूर्णिमा नी/संध्यागी मतमदा/संध्या-आरती म...तमदा/पोकपिररे गौरांगना/ब्राह्मण गी शङगाइदा/-पूर्णमा गी थाबू ङमजै,/डाल्ली जगत पुम्बा/अममबबू कोकहनबिरे/पापी माङहनबिरे/द्वापुर मुक्त नदियागी मचा कृष्ण ओयरमबदो/यशोदा गी मचादुना घौर ओयररेना.../जय ओयरे लाओनरक्ले।'

(3) 'संकीर्तन के समाहार-चरण का एक अंश :

'नितयायदा चङजौ, नितयायबू सोनजौ/गौरनितयाय अनीना चिङशिनबिबा नत्तना/अचम्बा नत्तेने /ऊरिबा नितयाइसे लौनम्बा शकतमनि/राधागा लोयनबा/ आनंगमंजरी/अमत्तनि नितयाय'

दूसरा- अंग्रेजी भाषा का प्रभाव बहुत तेज़ी से मणिपुरी भाषा पर पडना शुरू हो गया| इतिहासकार ज्योतिर्मय राय ने अपने ग्रन्थ, 'हिस्ट्री ऑफ मणिपुर' के पृष्ठ 103 पर उस काल का जो विवरण दिया है, उससे पता चलता है कि इसका प्रारम्भ सन् 1891 के पूर्व ही हो गया था, जब अंगरेजी साम्राज्य ने अपने राजनैतिक प्रभाव का प्रयोग करके अंगरेजी को बढ़ावा देन के सुनियोजित प्रयासों की नींव रख दी थी| इसका माध्यम बना मणिपुर में तत्कालीन पोलिटिकल एजेंट, जॉन्स्टन| ज्योतिर्मय राय ने स्पष्ट कहा है कि जैसे ही मणिपुर दरबार के कुछ अधिकारी उसके पास अपनी पद-उपाधियों की स्वीकृति के लिए पहुँचे, उसने उनके सामने एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की शर्त रख दी| थोड़े से संकोच के बाद उन अधिकारियों ने अपने निहित स्वार्थों की रक्षा के लिए जॉन्स्टन की शर्त के सामने हथियार डाल दिए और सन् 1835 में जॉन्स्टन मिडिल स्कूल स्थापित हो गया| उसके बाद जैसे-जैसे मणिपुर में शिक्षा-केन्द्र बढ़, अंगरेजी माध्यम और पश्चिमी शिक्षा पद्धति का विस्तार हुआ तथा अंगरेजी भाषा मणिपुरी को प्रभावित करने की स्थिति में आती गई| तीसरा- बीसवीं शताब्दी के पहले चरण से द्वितीय विश्व युद्ध के बीच 'मीतै चनु', 'ललित मंजरी', 'याकाइरोल', 'तरुण मणिपुर', 'मणिपुर मतम', 'नहारोल', 'साहित्य' आदि पत्रिकाएँ प्रारम्भ हुईं| इन्होंने साहित्य की विषयवस्तु के साथ ही भाषा के बारे में बहस खड़ी की, अंगरेजी के अलावा विश्व की अन्य भाषाओं की ओर ध्यान आकर्षित किया और मणिपुरी के मानक रूप, वर्तनी निर्धारण, लिपि चिन्ह निर्धारण आदि सन्दर्भों को बौद्धिक जगत व जनता के बीच लाने का काम किया| चौथा- नवजागरणकालीन कवि हिजम अङाङ्हल ने 'खम्बा थोइबी' महाकाव्य की रचना की| इसे कवि ने

चुङ्थाम मणि नामक लोकगायक से 'पेना' नामक लोकवाद्य पर खम्बा-थोइबी नामक लोकगाथा सुन कर रचा| 'पयार' नामक छंद में रचे गए इस महाकाव्य की भाषा का आधार मणिपुर के पारम्परीण लोक-समाज की भाषा-परम्परा है, जिसे कवि ने काव्य-रचना की सर्वोत्तम भाषा का गौरव प्रदान किया है| इस घटना ने मणिपुरी भाषा को बहुत गहरे प्रभावित किया, विशेषकर पौराणिक प्रतीकों और प्राचीन सांस्कृतिक शब्दावली के आधुनिक प्रयोग की ओर कवियों व भाषा-चिंतकों का ध्यान आकर्षित किया| पाँचवाँ- हिंदी प्रचार आंदोलन, राज्य से हिंदी पत्रिकाओं के प्रकाशन, साहित्यिक गतिविधियों (विशेष रूप से अनुवाद), शिक्षा में त्रि-भाषा सूत्र के लागू होने, बाज़ार और व्यापार के विस्तार तथा कुछ अन्य कारणों से मणिपुरी और खड़ी बोली हिंदी के बीच आदान-प्रदान के सम्बन्ध तेज़ी से विकसित हुए और सामान्य शब्दों के साथ ही हिंदी-संस्कृत की आलोचना-शब्दावली और काव्यशास्त्रीय शब्द मणिपुरी का अंग बने, साथ ही मणिपुरी भाषा की सामाजिक-सांस्कृतिक शब्दावली हिंदी में उपलब्ध हुई| छठा- मणिपुरी भाषा में रचना-विधाओं का विस्तार हुआ| देश-विदेश की यात्राओं पर केंद्रित यात्रावृत्त, जीवनचरित्र, बाल साहित्य, विज्ञान पर आधारित लेखन, पाठ्य-नाटक और रेडियो नाटक लेखन, देशी-विदेशी भाषाओं की ऐतिहासक जानकारी और उनके साहित्य-संसार पर केंद्रित समालोचनात्मक व विचारात्मक लेखन तेज़ी से होने लगा| इससे विश्व समाज, संस्कृति, साहित्य, सौंदर्यशास्त्र, विचारधारा, विज्ञान आदि की पारिभाषिक शब्दावली काफी संख्या में मणिपुरी भाषा का अंग बनी| सातवाँ- आधुनिक काल में धार्मिक-सांस्कृतिक कारणों से कहीं अधिक भाषा और साहित्य को अन्य भाषाओं की प्रवृत्तियों व नवीन चेतना से परिचित कराने के उद्देश्य से लेखकों ने अनुवाद किया| नवजागारणकालीन कवि ह्वाइबम नवद्वीपचंद्र द्वारा माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनादवध' के पहले सर्ग ('मेघनाद तूबा काव्य' नाम से) और रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजली' के कुछ गीतों का अनुवाद, अयेकपम श्यामसुन्दर सिंह द्वारा बंकिमचंद्र के उपन्यास, 'कपालकुंडला' का अनुवाद तथा वासुदेव शर्मा द्वारा कालिदास के 'अभिज्ञान शान्कुतलम्' का अनुवाद इसके उदाहरण हैं| आठवाँ- मणिपुरी के जनजातीय भाषाओं के साथ संपर्क के, पिछले किसी भी कालखंड से अधिक अवसर उपलब्ध हुए| इसका कारण औपचारिक शिक्षा में जनजातीय भाषाओं को आठवीं से स्नातक कक्षाओं तक स्थान दिया जाना है| मणिपुर सरकार के 'ट्राइबल रिसर्च इंस्टीट्यूट, मणिपुर' के सन् 2007 के प्रतिवेदन (आलेख लिखे जाने तक इसके बाद का प्रतिवेदन तैयार नहीं किया गया है) के अनुसार यह संस्थान मिज़ो, पाइते, मार (HMAR), थादौ-कुकी (स्नातक स्तर), कोम, ताङ्खुल, वाइफे, रोङमै, (बारहवीं कक्षा), जो (ZOU), माओ (दसवीं कक्षा), पाओमै, गाङ्ते, लियाङमै (आठवीं कक्षा) भाषाओं के शिक्षण हेतु पाठ्य-सामग्री तैयार करने के लिए अनुदान दे रहा है| इनमें से आधुनिक भारतीय भाषा (MIL) वर्ग के अंतर्गत स्नातक स्तर पर पढ़ाई जाने वाली जनजातीय भाषाओं के पाठ्यक्रम में कविता, कहानी, निबंध, अंगरेजी आदि भाषाओं से अनुवाद तथा अन्य स्तर के लिए कविता, कहानी

के साथ व्याकरण शामिल हैं। इन भाषाओं में स्वतंत्र रूप से भी साहित्य रचा जा रहा है। इस पूरी प्रक्रिया में जनजातीय भाषाओं और मणिपुरी के बीच नया सम्बन्ध विकसित हो रहा है। स्मरणीय है कि विभिन्न जनजातियों के लोग अपनी भाषा के अरिरिक्त दूसरी किसी जनजाति की भाषा को या तो बिलकुल नहीं समझते या बहुत कम समझते हैं, जबकि वे मणिपुरी अच्छी तरह जानते हैं और पारस्परिक संपर्क के लिए उसका व्यवहार करते हैं| साहित्य रचने की प्रक्रिया में जनजातीय लेखक मणिपुरी भाषा की भाषिक और रचनात्मक परम्परा को आत्मसात कर रहे हैं| इसके अतिरिक्त जो जनजातीय लेखक मणिपुरी भाषा में भी लेखन कर रहे हैं, वे उसकी भाषिक संस्कृति में कुछ-न-कुछ नया जोड़ रहे हैं| ऐसे लेखकों में अङम जातुङ चिरु, लनबोइ कबुई, तोम्बा कबुई आदि के उपन्यासों और कविताओं को देखने से पता चलता है कि ये अपने जनजातीय समाजों की सांस्कृतिक शब्दावली को मणिपुरी भाषा का अंग बना रहे हैं|

इन समस्त सन्दर्भों को भी विचार-विमर्श के केन्द्र में रखते हुए प्राचीन काल से लेकर आज तक मणिपुरी भाषा के विविध भाषाओं, ज्ञानानुशासनों और सामाजिक संस्कृतियों से संवाद तथा उसके भाषाई परिणामों का नवीन मूल्यांकन वस्तुतः हमारी अपनी समझ को सही दिशा देने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है|

सन्दर्भ :

1. “In ancient times there was a larg Aryan colony in the lands extending from Kamrup, Cachar and Tripura to Manipur and Burmah.” Introduction To Manipur, Lairenmayum Iboongohal Singh, Third Edition 1987, P. 12, publisher- Shree S.Ibochaoba Singh, Sega Road, Imphal.
2. “The concluson is that in the Vedic age many Aryans came to Manipur and settled here and they merged to or absorbed the orginal settlers of Manipur. That is to say that they came before the cast system being introduced in India.” IBID, P. 16.
3. “The perticular signiicance of the epic for the people of Manipur lies in the fact that the royal family of Manipur is traced back to Babhruvahana, the son of the Pandava Arjun and the local princes Chitrangada. The marriage of Arjun with Chitrangada is a very importane episode for the Manipuries.”
   Aspects of Indian Culture, E. Nilakanta Singh, First Edition 1982, P. 83, publisher- Jawaharlal Nehru Manipur Dance Academy, Imphal.
4. “Wave after wave of Aryan immigrants pushed beyond Mithila, crossed North-Bangal, reached Sylhet and pushing up the Barak Valley better known as the Surma Valley, reached the present border of Manipur. After this they crossed the hills through the well defined hill routs and reached the Manipur Valley. Most of them settled here. The first wave of these Prakeit-speaking Aryan immigrants reached Manipur by the first or the

second century B.C." A History of Manipuri Literature (vol-1), R.K. Jhalajit Singh, Second revised Edition 1987, P. 16, Publisher- Publc Book Store, Paona Bazar, Imphal – 795 001 on behalf of Manipur University, Imphal.

5. "Thus the forefathers of various Brahmins families have come from diffferent parts of the main land during the reign of Garib Niwaz; Gotimayum from Shantipur (West Bangal); Anoubam and Hanjabam from Kanyakubja (Uttar Pradesh);Hidangmayum from Sonar Dweep (West Bangal); Brahmacharimayum Anaubam from Barah Nagar (w. Bangal). "GaribNiwaz had enough foresight to realize that Manipur was then underpopulated and he therefore welcomed these Bramins to make Manipur a pluralistic societyy. In addition to that these brahmins contributed to the intellectual, cultural and spiritual advancment of the dwellers of Manipur valley." New Insights Into the Glorious Heritage of Manipur Vol-1 Editor- H. Dwijasekhar Sharma, R.K.Jhalajit Singh, (The Golden Rule of Garib Niwaz), P. 220, Publisher- Akansha Publishing House, New Delhi.

6. "The present endeavour therefore seeks primarily to have an inorthodox and rational re-look and reassessment of the much hype past of Manipur and to reset differentially such relevant archaeological, ethno-historical and politico-economic memories for the benifit of Manipur's current generation and the upcoming e-generation" H. Dwijasekhar Sharma, (Re-assessing History for Posterity : Editor's Rationale), IBID, P. 01.

7. "After all, a colonial construct lingers distorting the otherwise possible discerning views of any interested main land observer independently assessing Manipur or for the matter any segment of the 'North-east', the abaritish have very conveniently left the area more or less an living museum piece."
IBID, P. 02

8. "Only a re-susciation (no glorification) of its own ancient past could effectively stamp out the colonial imagery and re-construct the void between the ancient and the present." IBID, P.02

9. ए हिस्ट्री ऑफ मणिपुरी लिटरेचर, सी-एच. मनिहार सिंह, प्र. सं. 1989, प्रका. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

10. ए हिस्ट्री ऑफ मणिपुरी लिटरेचर- भाग-एक, आर.के. झलजीत सिंह, दूसरा सं 1987, प्रका. मणिपुर विश्व विद्यालय, इम्फाल के लिए पब्लिक बुक स्टोर, पाओना बाज़ार, इम्फाल।

11. हिंदी-मणिपुरी क्रिया संरचना, इबोहल सिंह काङ्जम, प्र. सं. 1989, पृ. 30-31, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली|

12. अरिबा मणिपुरी साहित्यगी इतिहास, एन. खेलचंद्र सिंह, प्र.सं. 1969, प्रका. लेखक स्वयं|

13. हिंदी और मणिपुरी परसर्गों का तुलनात्मक अध्ययन, अरिबम कृष्णमोहन शर्मा, प्र. सं. 1972, पृ. 02, प्रका. केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा|

14. मणिपुर : भाषा और संस्कृति, संपा. देवराज, प्र. सं 1988, पृ. 04, प्रका. हिंदी परिषद, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्व विद्यालय, इम्फाल।

15. "The immigrants did not come empty-handed. They came with their mother tongues, literary backgrounds and scriptures.....When the childrens of the immigrants became Manipuries, their folk-tales, legends, mother-tongues and scriptures contributed to the rchness of Manipur language and literature."

A History of Manipuri Literature Vol. 2, R.K.Jhalajt Singh, First Edition 1998, P. 07, Published by the author at Yaiskul Hiruhanba Leikai, Imphal.

16. "उडिया, बंगला, असमिया आदि प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के उद्भव के समय ब्रजबुल की उत्पत्ति हुई है| उक्त प्रदेशों के पदकर्ताओं द्वारा ब्रजबुलि में रचना करके उसमें स्व-स्व प्रदेशों की भाषाओं के शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है| अर्थात बंगाल की ब्रजबुलि में कुछ बंगला के शब्द, असमिया ब्राजबुल में कामरूपी असमिया शब्द तथा उडिया ब्रजबुलि में उडिया के शब्दों का प्रयुक्त होना स्वाभाविक सा था|" ब्रजबुलि की भाव-संपदा, अरुण होता, प्र. सं. 2007, पृ. 45, प्रका. रमन बुक सेंटर, सदर रोड, मथुरा |

17. हिस्ट्री ऑफ मणिपुर, ज्योतिर्मय राय, दूसरा संस्करण 1973, पृ. 103,

कृतज्ञता ज्ञापन एवं आभार प्रदर्शन :

1. प्राचीन मणिपुरी भाषा में प्राप्त स्तोत्र और गीत लेखक को मणिपुर प्रवास में एन. खेलचंद्र सिंह के सौजन्य से उनके व्यक्तिगत संग्रह में मौजूद पांडुलिपियों से प्राप्त हुए थे| उन्होंने ही मणिपुरी भाषा की प्राचीन और मध्यकालीन पांडुलिपियों को बहुत बड़ी संख्या में (कुछ विद्वानों के अनुसार आठ-सौ से भी अधिक) खोज कर संग्रहीत किया था और उनकी सूची विषयवस्तु सहित तैयार की थी| प्राचीन मणिपुरी भाषा के अध्ययन के क्षेत्र में वे अपने जीवन-काल में ही किंवदंती पुरुष बन गए थे| लेखक के प्रति वे हमेशा कृपालु रहे, जिसके लिए वह उनका ऋणी है|
2. आलेख में प्रयुक्त वैष्णव भक्त कवियों के पद लेखक को मणिपुर विश्व विद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक एलाङ्बम विजय लक्ष्मी द्वारा उपलब्ध कराए गए हैं| वर्त्तमान में ब्रजबुलि के स्थान पर मणिपुरी भाषा में गाए जाने वाले संकीर्तन के काव्यांश भी उन्होंने ही प्रसिद्द संकीर्तन गायिका निङ्थौखोङ्जम ओङ्बी रानी से सुन कर लिखे और भेजे हैं| इसके लिए लेखक उनका आभारी है|

हमारे समय के महत्वपूर्ण कवि आलोक धन्वा की उतनी ही महत्वपूर्ण कविता 'ब्रूनों की बेटियां' पर कवि समीक्षक कुमार मुकुल का भाष्य. कुमार मुकुल ने इस कविता को बड़े परिप्रेक्ष्य में देखते हुए न केवल इसका राजनीतिक मन्तव्य खोला है बल्कि इस कविता की खासियत और इसके कला पक्ष पर भी उनकी दृष्टि है।

भाष्य (आलोक धन्वा :: ब्रूनो की बेटियां) – कुमार मुकुल

ज्योर्दानों फ़िलिप्पों ब्रूनो सोलहवीं सदी के महान इतालवी वैज्ञानिक और दार्शनिक थे. उन्होंने गिरजे के वर्चस्व और धार्मिक रूढ़ियों को चुनौती देते हुए कोपरनिक्स की इस स्थापना का समर्थन किया कि ब्रह्मांड के केन्द्र में सूर्य है और हमारी पृथ्वी के अलावा और भी पृथ्वियाँ हैं। सन 1600 में ईसाई धर्म न्यायालय के आदेश पर उन्हें ज़िन्दा जला दिया गया. बाद में महान वैज्ञानिक गैलीलियो ने इसी वैज्ञानिक सिद्धांत का विकास किया.

वे ख़ुद टाट और काई से नहीं बनी थीं
उनकी माताएँ थीं
और वे ख़ुद माताएँ थीं.

उनके नाम थे
जिन्हें बचपन से ही पुकारा गया
हत्या के दिन तक
उनकी आवाज़ में भी
जिन्होंने उनकी हत्या की !

उनके चेहरे थे
शरीर थे, केश थे
और उनकी परछाइयाँ थी धूप में.

गंगा के मैदानों में उनके घंटे थे काम के
और हर बार उन्हें मज़दूरी देनी पड़ी !
जैसे देखना पड़ा पूरी पृथ्वी को
गैलीलियो की दूरबीन से !

वे राख और झूठ नहीं थीं
माताएँ थीं
और कौन कहता है? कौन? कौन वहशी?

कि उन्होंने बगैर किसी इच्छा के जन्म दिया?

उदासीनता नहीं थी उनका गर्भ
ग़लती नहीं थी उनका गर्भ
आदत नहीं थी उनका गर्भ
कोई नशा-
कोई नशा कोई हमला नहीं था उनका गर्भ

कौन कहता है?
कौन अर्थशास्त्री?

उनके सनम थे
उनमें झंकार थी

वे माताएँ थीं
उनके भी नौ महीने थे
किसी व्हेल के भीतर नहीं-पूरी दुनिया में
पूरी दुनिया के नौ महीने !

दुनिया तो पूरी की पूरी है हर जगह
अटूट है
कहीं से भी अलग-थलग की ही नहीं जा सकती
फिर यह निर्जन शिकार मातृत्व का?

तुम कभी नहीं चाहते कि
पूरी दुनिया उस गाँव में आये
जहाँ उन मज़दूर औरतों की हत्या की गयी?

किस देश की नागरिक होती हैं वे
जब उनके अस्तित्व के सारे सबूत मिटाये जाते हैं?
कल शाम तक और
कल आधी रात तक
वे पृथ्वी की आबादी में थीं
जैसे ख़ुद पृथ्वी
जैसे ख़ुद हत्यारे
लेकिन आज की सुबह?
जबकि कल रात उन्हें ज़िन्दा जला दिया गया !

क्या सिर्फ़ जीवित आदमियों पर ही टिकी है
जीवित आदमियों की दुनिया?

आज की सुबह भी वे पृथ्वी की आबादी में हैं

उनकी सहेलियाँ हैं
उनके कवि हैं
उनकी असफलताएँ
जिनसे प्रभावित हुआ है भारतीय समय
सिर्फ़ उनका वर्ग ही उनका समय नहीं है !

कल शाम तक यह जली हुई ज़मीन
कच्ची मिट्टी के दिये की तरह लौ देगी
और
अपने नये बाशिंदों को बुलायेगी.

वे ख़ानाबदोश नहीं थीं
कुएँ के जगत पर उनके घड़ों के निशान हैं
उनकी कुल्हाड़ियों के दाग़
शीशम के उस सफेद तने पर

बाँध की □लान पर उतरने के लिए
टिकाये गये उनके पत्थर
उनके रोज़-रोज़ से रास्ते बने हैं मिट्टी के ऊपर

वे अचानक कहीं से नहीं
बल्कि नील के किनारे-किनारे चलकर
पहुँची थी यहाँ तक.

उनके दरवाज़े थे

जिनसे दिखते थे पालने
केश बाँधने के रंगीन फ़ीते
पपीते के पेड़
ताज़ा कटी घास और
तम्बाकू के पत्ते-
जो धीरे धीरे सूख रहे थे
और साँप मारने वाली बर्छी भी.

वे धब्बा और शोर नहीं थीं
उनके चिराग़ थे
जानवर थे
घर थे

उनके घर थे
जहाँ आग पर देर तक चने की दाल सीझती थी
आटा गूँधा जाता था
वहाँ मिट्टी के बर्तन में नमक था
जो रिसता था बारिश के दिनों में
उनके घर थे
जो पड़ते थे बिल्लियों के रास्तों में.

वहाँ रात □लती थी
चाँद गोल बनता था

दीवारें थीं
उनके आँगन थे
जहाँ तिनके उड़ कर आते थे
जिन्हें चिड़ियाँ पकड़ लेती थीं हवा में ही.

वहाँ कल्पना थी
वहाँ स्मृति थी.

वहाँ दीवारें थीं
जिन पर मेघ और सींग के निशान थे
दीवारें थीं
जो रोकती थीं झाड़ियों को
आँगन में जाने से.

घर की दीवारें
बसने की ठोस इच्छाएँ
उन्हें मिट्टी के गीले लोंदों से बनाया था उन्होंने
साही के काँटों से नहीं
भालू के नाखुन से नहीं

कौन मक्कार उन्हें जंगल की तरह दिखाता है

और कैमरों से रंगीन पर्दों पर
वे मिट्टी की दीवारों थीं
प्राचीन चट्टानें नहीं
उन पर हर साल नयी मिट्टी
चढ़ाई जाती थी !
वे उनके घर थे-इन्तज़ार नहीं.
पेड़ के कोटर नहीं
उड़ रही चील के पंजों में
दबोचे हुए चूहे नहीं.

सिंह के जबड़े में नहीं थे उनके घर
पूरी दुनिया के नक्शे में थे एक जगह
पूरे के पूरे

वे इतनी सुबह आती थीं
वे कहाँ आती थीं? वे कहाँ आती थीं?
वे क्यों आती थीं इतनी सुबह
किस देश के लिए आती थीं इतनी सुबह?

क्या वे सिर्फ़ मालिकों के लिए
आती थीं इतनी सुबह
क्या मेरे लिए नहीं?
क्या तुम्हारे लिए नहीं?

क्या उनका इतनी सुबह आना
सिर्फ़ अपने परिवारो का पेट पालना था?

कैसे देखते हो तुम इस श्रम को?
भारतीय समुद्र में तेल का जो कुआँ खोदा
जा रहा है
क्या वह मेरी ज़िन्दगी से बाहर है?
क्या वह सिर्फ़ एक सरकारी काम है?

कैसे देखते हो तुम श्रम को !

शहरों को उन्होंने धोखा और
जाल नहीं कहा

शहर सिर्फ़ जेल और हारे हुए मुक़दमे
नहीं थे उनके लिए

उन्होंने शहरों को देखा था
किसी जंगली जानवर की आँख से नहीं!

शहर उनकी ज़िन्दगी में आते-जाते थे
सिर्फ़ सामान और क़ानून बनकर नहीं
सबसे अधिक उनके बेटों के साथ-साथ
जो इस समय भी वहाँ
चिमनियों के चारों ओर
दिखाई दे रहे हैं!

उनकी हत्या की गयी
उन्होंने आत्महत्या नहीं की
इस बात का महत्त्व और उत्सव
कभी धूमिल नहीं होगा कविता में!

वह क्या था उनके होने में
जिसके चलते उन्हें ज़िन्दा जला दिया गया?
बीसवीं शताब्दी के आखिरी वर्षो. में
एक ऐसे देश के सामने
जहाँ संसद लगती है?

वह क्या था उनके होने में
जिसे ख़रीदा नहीं जा सका
जिसका इस्तेमाल नहीं किया जा सका

जिसे सिर्फ़ आग से जलाना पड़ा
वह भी आधी रात में कायरों की तरह
बंदूकों के घेरे में?

बातें बार-बार दुहरा रहा हूँ मैं
एक साधारण-सी बात का विशाल प्रचार कर रहा हूँ!

मेरा सब कुछ निर्भर करता है
इस साधारण-सी बात पर!

वह क्या था उनके होने में
जिसे जला कर भी
नष्ट नहीं किया जा सकता !

पागल तलवारें नहीं थरं उनकी राहें
उनकी आबादी मिट नहीं गयी राजाओं की तरह !
पागल हाथियों और अन्धी तोपों के मालिक
जीते जी फ़ॉसिल बन गये
लेकिन हेकड़ी का हल चलाने वाले
चल रहे हैं

रानियाँ मिट गयीं
जंग लगे टिन जितनी क़ीमत भी नहीं
रह गयी उनकी याद की

रानियाँ मिट गयीं
लेकिन क्षितिज तक फ़सल काट रही
औरतें
फ़सल काट रहीं हैं।

भाष्य - कुमार मुकुल

लीलाधर जगूड़ी की 'मंदिर लेन ' और **आलोक धन्वा की 'ब्रूनो की बेटियाँ** ' हिंदी की चर्चित कविताओं में हैं। **श्रीकांत वर्मा** की ऐतिहासिक-राजनीतिक कविताओं के बाद **रघुवीर सहाय** की समकालीन राजनीतिक कविताओं ने साहित्य की दुनिया को काफी प्रभावित किया. सहाय की राजनीतिक कविताओं में जो राजनीतिक संदर्भ बिखरे पड़े हैं, वे जैसे जगूड़ी की 'मंदिर लेन में संगठित होकर उसे धारदार बनाते हैं। 'ब्रूनो की बेटियाँ के संदर्भ भी राजनीतिक ही हैं, पर वह अपेक्षाकृत घटना केन्द्रित कविता है। 'मंदिर लेन की धार जहाँ तलवार की धार है, 'ब्रूनो की बेटियाँ की धार एक पंखुड़ी की धार है।

दोनों कविताएँ मानव जीवन की मार्मिक विडंबनाओं पर आधारित हैं। जगूड़ी के यहाँ यथार्थ का तीखापन है, तो आलोक के यहाँ करुणा की नमनीयता है। 'ब्रूनो की बेटियाँ शीर्षक से ही कविता के मूल स्वर ध्वनित होते हैं। ब्रूनो को उसकी वैज्ञानिक खोज के लिए सत्ता के कोप का शिकार होना पड़ता है। अपनी सच्चाइयों के लिए जिंदा जला दी जाने वाली स्त्रियों को कवि ब्रूनो की बेटियों के रूप में देखता है। कवि जानना चाहता है कि क्या सत्य के उदघाटन के लिए ब्रूनो, गैलीलियो से इन स्त्रियों तक के लिए आज भी सत्ता प्रतिष्ठान की क्रूरता वैसी ही पूर्ववत है। क्या आदिम साम्यवाद से राजतंत्र और इस उदार लोकतंत्र तक सब सभ्यता के मुखौटे हैं।

सवाल नया नहीं है। धूमिल ने भी यह सवाल उठाया था. आलोक भी उस तीसरे आदमी की ही बात करते हैं। जो रोटी से खेलता है, स्त्रियों के अस्तित्व से खेलता है। यह खेल बीसवीं सदी में आज भी जारी है, उस देश के सामने जहाँ संसद लगती है। सच के साथ उसके उदघाटनकर्ता को बचा लेने की बेचैनी से ही यह कविता पैदा होती है। कविता में संवेदना की मार्मिकता की बनावट **रूसी कवि आंद्रे बोजनेसकी** की स्त्री संबंधी कविता की याद दिलाती है। वहाँ भी कोई एक स्त्री को बूटों से कुचल रहा है। वहाँ दर्द गहरा है, आलोक के यहाँ एक रोमान है, जो मर्म को उत्सवी बना देता है। 'पतंग कविता में भी वह इसी तरह क्रांतिकारी रोमान की शरण लेते दिखते हैं, जब वे लिखते हैं कि बच्चों को मारनेवाले शासको, तुम्हें बर्फ में फेंक दिया जाएगा और तुम्हारी बंदूकें भी बर्फ में गल जाएँगी. बेचैनी जब बढ़ती है और हल नहीं मिलता, तब आलोक रोमान की शरण लेते हैं। ऐसा रोमानी वृत्ति और यथार्थ से दूरी के कारण भी होता है। बच्चों और स्त्रियों से नजदीकी संबंधों का अभाव भी यह रोमानी प्रवृत्ति दर्शाता है।

'ब्रूनो की बेटियाँ का महत्त्व न तो इसकी मार्मिकता को लेकर है, न लय को लेकर, इसकी अहमियत इस मानी में है कि यह कविता पहली बार स्त्री के श्रम और सामर्थ्य को उसकी विकासमानता में प्रस्तुत करती है। **रघुवीर सहाय** के यहाँ स्त्री का फुटकर दर्द है, तो **गगन गिल, असद** के यहाँ विगलित रोमानी करुणा; **विमल कुमार** के यहाँ यह सब रहस्य के झीने आवरण में छिपा है, पर आलोक के यहाँ उसके सामर्थ्य का सौंदर्यबोध है।

कविता की शुरुआत जीवन में स्त्री के उपेक्ष्य श्रम की भूमिका और उसके अस्तित्व के विडंबित अस्वीकार से होती है। आखिर क्या मजबूरी थी कि हत्यारों को अपने सहज संबंधों को ही जला देना पड़ा। कैसे तुच्छ हित थे उनके. सभ्यता के इस पड़ाव पर भी हम स्त्री श्रम की स्वतंत्र भूमिका क्यों नहीं स्वीकारते. उनके श्रम की कीमत **गैलीलियो** की दूरबीन की कीमत क्यों हो जाती है।

श्रम के कालातीत सौंदर्य की ऐसी सहज, नम अभिव्ययक्ति हिंदी कविता में कम ही मिलती है। परंपरा में **शमशेर और केदारनाथ सिंह** ही इसे साध पाते हैं। आगे कविता में घटना का विवरण मिलता है, जिसे रेटारिक के इस्तेमाल से रोचक बनाया गया है। पहले कवि मातृत्व के निर्जन शिकार पर द्रवित होता है, फिर समाज के वहशी व अर्थशास्त्रियों से सवाल करता है। उन्हें चुप करा देता है। असल में वह वहशी व अर्थशास्त्री कवि के भीतर भी छिपे हैं, जिनसे एकालाप कर वह उन्हें आसानी से चुप करा देता है। **मुक्तिबोध** की तरह कविता के बाहर हर मोरचे पर उनसे लोहा लेना सबके लिए संभव नहीं. ऐसे में कविता के सौंदर्य तत्व के नष्ट होने का भी भय होता है। जीवन के अंधेरों में जाने का खतरा कौन उठाता है। अंधेरे का अपना तिलिस्म होता है, अपनी घुटन होती है। उसे तोड़ने में आदमी टूट जाता है। उसके सिजोफ्रेनिया जनित मनोविकार के शिकार होने का भय होता है। 'ब्रूनो की बेटियाँ में एक उजाला है, टूटन की कुंठा यहाँ नहीं है। मुकितबोध की तरह कुंठा को भी सौंदर्यबोध के घेरे में अभी शामिल नहीं किया जा सका है। जीवन की कचोट और कुंठाओं से **रघुवीर सहाय** भी

खुद को अमीर बनाते हैं। पर उसे उसकी आत्मवक्तव्यता से मुक्त कराकर सहज, सच्चे ढंग से मात्रा शमशेर ही अभिव्यक्त कर पाते हैं। अभाव के व्यंग्य से जूता चबाते कुत्ते के रूप में अपने हवाई नुकीले दाँत मात्रा वही दिखा पाते हैं। इस सबके बावजूद वे सौंदर्यबोध बचाए रख सके हैं। आलोक के यहाँ दर्द तुरंत उत्सवता में बदल जाता है। वह अपने हवाई नुकीले दाँत छुपा ले जाते हैं।

जीवन में श्रम की भूमिका और उसका विकास आगे कविता में फिर साधा गया है। यही एक चीज कविता को समय से आगे ले जाती है। उसी तरह जैसे **'मुक्तिप्रसंग** का अंतर्दव्द, 'मोचीराम का आत्मालोचन और 'मंदिर लेन की तलवार की धार उसे अपने समय से आगे ले जाती है। श्रम संबंधों की जटिलता को उसके बहुआयामों के साथ प्रस्तुत करना, यही इस कविता का दाय है। श्रम की सभ्यता को यह कविता नए सिरे से रेखांकित करती है। और तमाम सभ्यताओं के विरुद्ध इसे आधार देती है। स्त्री के श्रम की सभ्यता पर जो दुनिया भर में एक सी है, कविता में ढंग से विचार किया गया है। उसे पहली बार जमीन मिलती है। कवि कुंओं के जगत पर घड़ों के रखने से बने निशान देखता है। बाँध की ढलान पर टिकाए पत्थर देखता है। वह बतलाता है कि वह अचानक कहीं से नहीं, नील के किनारे-किनारे चलकर वहाँ तक पहुँची हैं। उनके घरों में पालने और केश बाँधने के रंगीन फीते हैं, तो साँप मारने की बरछी भी।

ये पंक्तियाँ बताती हैं कि उनके जीवन का भी एक सभ्य क्रम है। वह कोई हड़बड़ी में जी गई आवारा जिंदगी नहीं है। वहाँ जीवन की सरसता, समरसता भी है; जीवन का स्वीकार है, तो विसंगतियों का प्रतिकार भी; उनके आँगन में उड़ते तिनकों को चिड़िया उड़-उड़कर पकड़ती है, तो उनके रास्तों को रूढ़ियों की बिल्लियाँ काटती भी हैं। यहाँ कवि पुन: पूछता है कि कौन मक्कार उन्हें जंगल की तरह दिखाता है, कैमरों से रंगीन परदों पर. कवि का अनजानापन यहाँ भी समझ से परे है, कवि मीडिया की अपसंस्कृति से अपरिचित हो, ऐसा तो संभव नहीं। पर कुछ बाध्यताएँ हैं कवि की, जो जवाब को कवि से सवाल की तरह पेश कराती हैं। अपने भीतर के अंधेरों में कवि झाँके, तो वे मक्कार उसे मिल ही जाएँगे. उन पर तर्जनी कवि नहीं उठाएगा, तो कौन उठाएगा?

विसंगतियों से अनजानेपन की हद तक दूर सुरक्षित कवि एकालाप क्यों कर रहा है। उनसे संलाप किए बगैर श्रम की पुनर्जीवितता का उत्सव क्यों मनाने लगता है। सच का, श्रम का मूल्य माँगने वाला ब्रूनो से उसकी बेटियाँ तक आज भी इसीलिए मारी जा रही हैं, क्योंकि हत्यारों से संलाप की बजाय हम उनसे एकालाप करने लगते हैं।

उदघाटित सच का तो हम अपने लिए उपयोग कर लेते हैं, पर सच के लिए अपना क्रूस ढोने वालों की पीड़ा को उत्सवता के अवलेह में लपेटकर धर्म की तरह उसका विशाल प्रचार करने लगते हैं। कवि की बेचैनी अपने अंदर के अंधेरे व द्वंद्व से निपट न पाने की असफलता से पैदा होती है। इसीलिए कवि का स्वर कभी तो

करुणा से विगलित हो जाता है, कभी उत्सवता धारण करता है व कभी आँख मूंद अपनी काल्पनिक विजय को निर्णायक स्वर में प्रस्तुत करता है।

हल न ढूंढ पाने की स्थिति में कवि उदात्त प्राचीन प्रतीकों का सहारा लेता है व कविता सरलीकरण का शिकार होती है। इतने मार्मिक सवालों का जवाब कवि समेट लेता है कि जैसे पागल तोपों के मालिक मिट गए, जुल्म भी मिट जाएगा. जबकि '**जिलाधीश** कविता में कवि खुद बताता है कि राजा-रानी मिटे नहीं, वे आधुनिक शासकीय पदों में बदल गए हैं। उनकी शातिरी बढ़ गई है। पिछले दिनों रूस में जिस तरह संसद पर टैंकों से हमला किया गया वह राजतंत्रा की ज्यादतियों से कमतर ज्यादतियाँ हैं। क्या संसद को घेर लेने वाली कैथर कला की औरतें ही क्षितिज तक फसल काटती औरतें हैं?

कविता में श्रम की कीमत तो बखूबी बता देता है कवि, पर श्रम की लूट को नष्ट करने का तरीका नहीं बतलाता. लूट पर सवाल उठा देना ही काफी नहीं है। अभिव्यकित के सवाल उठाने से उसके खतरे उठाने तक तो मुक्तिबोध ले जाते हैं कविता को. हमें उसे उसके आगे ले जाना होगा। इसीलिए साधारण-सी बात को विशाल प्रचार की जगह जीवन के छोटे-छोटे खतरों से निपटाना ज्यादा जरूरी है। सवाल की एक उम्र होती है। उसके बाद वह जवाब नहीं बनता, तो समय उसे खारिज कर जवाब ढूंढ लेता है। रोमान भी एक वक्त के बाद दर्द की तरह दवा नहीं बनता, तो नष्ट हो जाता है।

दरअसल कविता यहीं समाप्त हो जाती है। यह बताकर कि उसके बेटे अभी जीवित हैं और आगे की लड़ाई वही लड़ेंगे, कवि नहीं।

अनुवाद और निर्वचन का संबंध

अनुराधा पाण्डेय

भारत के उपलब्ध साहित्य में सबसे प्राचीन वैदिक वाङमय को माना जाता है। अनुवाद के प्रमाण वैदिक वाङमय में मिलते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि अनुवाद नितांत ही प्राचीन विधा है और जिसका प्रयोग पुरातन समय से होता चला आ रहा है। परंतु वेदों के रचयिताओं के बारे में सटीक प्रमाण न होने के कारण उन्हें अपौरूषेय माना जाता है और इस वजह से अनुवाद के स्वरूप पर थोड़ा संदेह होता है। लेकिन इसके वाजूद भी अनुवाद का प्रयोग वेदों में किया गया है यह तो सत्य है, भले ही उसे अनुवाद का नाम न दिया जाए, उसे अनुवाद न माना जाए। वेदों के अतिरिक्त लौकिक संस्कृत में अनुवाद के प्रमाण मिलते हैं और जिन्हें सर्व स्वीकृति भी प्राप्त है। लौकिक संस्कृत यानि जिस संस्कृत का प्रयोग लोक द्वारा किया जाता था। इसमें भी अनुवाद कई रूपों में होकर गुजरता था। संस्कृत भाषा का प्रयोग लोक में केवल ब्राह्मणों द्वारा अर्थात पंडितों द्वारा किया जाता था और उसमें भी केवल पुरुषों द्वारा ही। इसके कई प्रमाण हैं। कालिदास द्वारा लिखित विविध नाटकों में इस तरह से भाषा का प्रयोग देखा जा सकता है। जिसमें ब्राह्मण संस्कृत बोलते हैं और स्त्री पात्र एवं बाकी दुसरे पात्र 'प्राकृत भाषा' का प्रयोग करते हैं। अब इस व्यवस्था के दौरान कुछ पात्र ऐसे होते हैं जो पंडितों की बातों का संस्कृत से प्राकृत में और प्राकृत से संस्कृत में अनुवाद करते थे। इस तरह से अनुवाद का प्रयोग कालिदास के नाटक अभिज्ञानशाकुंतलम्, मेघदूतम्, कुमारसंभवम् आदि में किया गया है।

वेदों से भी प्राचीन परंपरा भाषा की है। जबसे मानव ने इस धरा पर जन्म लिया है तभी से भाषा का प्रयोग किया जाना शुरू हो गया है, चाहे वह भाषा मूक रही हो या मुखर। अनुवाद के बारे में कुछ विद्वानों का यह मानना है कि जब से भाषा की परंपरा विकसित हुई है तभी से अनुवाद की भी परंपरा शुरू हुई है। इस तथ्य को इससे सिद्ध किया जा सकता है कि जब भी कोई बात या विचार किसी भी व्यक्ति के मन में आते हैं तो उन्हें अभिव्यक्त करने से पहले व्यक्ति अपने मस्तिष्क में सोचता-विचारता है तदुपरांत उन्हें अभिव्यक्त करता है और इस प्रकार से सोचने, विचारने और उसके बाद कहने की प्रक्रिया भी अनुवाद से ही होकर पूरी होती है। इस प्रक्रिया में भी विचारों का मानव मस्तिष्क से ध्वनियों में निःसृत होना अनुवाद की प्रक्रिया है। इस तथ्य से यह प्रमाणित होता है कि अनुवाद की परंपरा और भी पुराने समय से चली आ रही है।

अनुवाद सिद्धांत को लेकर भारतीय संदर्भ में लेखन कार्य बहुत बाद में शुरू हुआ, यद्यपि पाश्चात्य देशों में यह शुरुआत बहुत पहले हो चुकी थी। भारतीय संदर्भ में अनुवाद सिद्धांत की पहली पुस्तक सन् 1910 में 'आर॰ रघुनाथ राव' द्वारा लिखी 'अनुवाद की कला' है। सिद्धांतो की शुरुआत भले ही विलंब से हुई पर अस्तित्व तो बहुत ही पुराने समय से विद्यमान रहा है। अनुवाद की परंपरा बहुत ही प्राचीन है। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपों में इसके प्रयोग किए जाते थे। पहले यह परंपरा मौखिक रूप में थी। जैसा की विविध पुस्तकों में अनुवाद को

परिभाषित किया गया है। लिखित परंपरा के स्वरूप में न आने तक अध्ययन-अध्यापन का कार्य मौखिक रूप में ही किया जाता था। गुरुकुल की परंपरा थी, और शिक्षा ग्रहण के लिए शिष्य और ज्ञान देने के लिए गुरु दोनों ही मुख्य समाज से अलग शांत जगह पर निवास करते थे और वहीं पर रहना और अध्ययन का कार्य करते थे। ज्यादातर इनके निवास जंगलों में होते थे। इसी परंपरा के चलते कुछ ग्रंथ जो जंगलों में कुछ समय पश्चात रचे गए उन्हें 'आरण्यक' कहा जाता है। इस प्रकार गुरु और शिष्य जंगलों में रहते थे और अध्ययन-अध्यापन का कार्य मौखिक रूप में होता था। शिष्य-गुरु द्वारा कहे गए वचनों को दुहराते थे। पहले गुरु बोलते थे तदुपरांत शिष्य उनकी कही हुई बात का अनुसरण करते थे और श्लोकों, शुक्तियों को बोल-बोल कर याद करते थे। इस पूरी प्रक्रिया को निर्वचन करना कहा जाता था।

अनुवाद और निर्वचन की परंपरा प्राचीन होने के साथ-साथ अंतरसंबंधित भी रही है। तत्कालीन समय में अनुवाद का एक ही रूप था निर्वचन। निर्वचन की परंपरा से होकर अनुवाद की परंपरा विकसित हुई। लिखित माध्यम में आज अनुवाद के विविध प्रकार और उप-प्रकार विकसित हो चुके हैं, परंतु इन सबकी नींव निर्वचन से ही विकसित हुई है। इससे होकर ही अनुवाद के बाकी विविध प्रकारों का विकास हुआ है। अनुवाद की जो भी व्याख्या की जाती है वह सब निर्वचन से ही संबन्धित करके की जाती है और इन व्याख्याओं के द्वारा ही अनुवाद और निर्वचन का अंतरसंबंध स्पष्ट होता है। कुछ व्याख्याएं निम्न हैं।...

अनुवाद" शब्द 'अनु' उपसर्ग तथा 'वद्' धातु के संयोग से बना है। अनु+वाद = अनुवाद। 'अनु' उपसर्ग का अर्थ होता है (पीछे या अनुगमन करना) तथा 'वाद' शब्द का संबंध है वद् धातु से, जिसका अर्थ होता है (कहना या बोलना)। इस प्रकार अनुवाद शब्द का शाब्दिक अर्थ होगा 'कहने या बोलने के बाद बोलना।

पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग ज्ञात बात को कहने के संदर्भ में किया है– अनुवादे चरणानाम। गुरुकुल में जो शिक्षा दी जाती थी, प्रायः गुरु या आचार्य जो कुछ बोलते या मंत्रों का उच्चारण करते थे, शिष्य गुरु के उन कथनों के पीछे-पीछे उन्हीं बातों को दोहराते थे। इसी को 'अनुवचन' या 'अनुवाद' कहा जाता था। भर्तृहरि ने भी 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग दुहराने या पुनर्कथन के अर्थ में ही किया...'आवृतिरनुवादों वा'। जैमिनीय न्यायमाला में भी अनुवाद को ज्ञात का पुनर्कथन ही माना गया है----- 'ज्ञातस्य कथनमनुवादः। उपनिषदों में भी अनुवाद का प्रयोग कई व्याकरणिक रूपों में मिलता है। वृहदारण्यक उपनिषद में 'अनुवदति' का प्रयोग दुहराने के अर्थ में हुआ है। यास्क कृत 'निरुक्ट में भी अनुवाद का प्रयोग आया है। न्यायशास्त्र में वाक्य के तीन प्रकार बताए गए हैं विधि, अर्थवाद और अनुवाद। विधि के पुनः कथन को ही अनुवाद की संज्ञा दी गई है। अनुवाद का सामान्य अर्थ था- एक बात की पुष्टि में कही गई दूसरी बात अथवा एक ही बात की अधिक और स्पष्ट पुनः व्याख्या। मनुस्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार कुल्लूकभट्ट अनुवाद का अर्थ 'पुनःकथन' ही कहते हैं। आज हिंदी में 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में चल रहा है, वह संस्कृत में प्रयुक्त अर्थ से भिन्न है।

हिंदी में अनुवाद का अर्थ है- एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा में कहना' यह एक प्रकार का भाषांतर है।

उपरोक्त व्याख्याओं से यह स्पष्ट होता है कि अनुवाद की परंपरा पूरी तरह से निर्वचन की परंपरा के पश्चात विकसित हुई है। निर्वचन की प्रक्रिया के बाद लेखन रूप में भाष्य, टीका टिप्पणी आदि रूपों का विकास होता है जो एक प्रकार से अन्तः भाषिक अनुवाद की कोटी में आते हैं। इनकी चर्चा क्रमशःनिम्नवत है।..

निर्वचन- निर्वचन का मुख्य अर्थ है व्याख्या करना। यह एक वाचिक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत किसी भी श्लोक या शुक्ति की पूरी व्याख्या की जाती थी। लिखित रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है जिसे निरुक्ति भी कहा जाता है। डॉ॰नगेंद्र द्वारा संपादित पुस्तक 'अनुवाद विज्ञानः सिद्धांत एवं प्रयोग' में डॉ॰ रामचन्द्र प्रसाद अपने लेख 'अनुवाद का महत्व' में निर्वचन की व्याख्या निम्न रूप में करते हैं- "निर्वचन से तात्पर्य किसी शब्द का एक धातु अथवा अनेक धातुओं के साथ संबंध स्थापित करके उसका अर्थ निर्धारित करना।" वेदों के मंत्रों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों तथा आरण्यकों में कई स्थलों पर इस प्रक्रिया का आधार ग्रहण किया गया है। निरुक्त ग्रन्थों में उपलब्ध और प्रख्यात ऋषि यास्क द्वारा प्रणीत 'निरुक्त' में तो इसी प्रक्रिया का सांगोपांग विवेचन करते हुए वेदों के मंत्रों की व्याख्या की गयी है तथा आगे चलकर वेदों के प्रख्यात भाष्यकर्ता स्कंद, सायण आदि ने भी इसी पद्धति के संकेत अनेक स्थलों पर मिल जाते हैं। जैसे....

गायन्ति त्वा गायत्रिणे (ऋग्वेद १.१०.१)

अर्चन्तोअर्कममदिरस्य पीयते (ऋग्वेद १.११६.७)

इसी प्रकार के अन्य तीनों वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों में भी निरुक्तियों के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं।

पद-पाठ पद पाठ से तात्पर्य है संहिताबद्ध वेद मंत्रों के पदों को पृथक-पृथक करना। जिसके अंतर्गत संधिविच्छेद, उपसर्ग तथा उदात्तादि स्वरों पर भी प्रकाश डाला जाता है। जैसे....

संहिता पाठ- आ व इन्द्र क्रि वीं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम

महिष्ठम् सिञ्च इंदुभिः

पद पाठ- आ। वः। इन्द्रम। क्रिविम्। यथा। वाज अ यंतः।शत अ क्रतुम्। महिष्ठम्। सिञ्चे। इंदु अ भिः।।

इन पाठों से आसानी यह हुआ कि ब्राह्मण ग्रन्थों में और आगे चलकर निरुक्त ग्रन्थों की निरुक्तियों का एक आधार पद पाठ भी रहा। सातवीं शती तक न जाने कितने भाष्यकारों ने भाष्य किया होगा किंतु ये सभी

आज उपलब्ध नहीं हैं। सातवीं शती में स्कंदस्वामी, नारायण और उद्गीथ ने, इनके बाद माधव भट्ट, वेंकटमाधव, धानुष्कयज्वा, आनंदतीर्थ और आत्मानंद आदि ने ऋग्वेद का संपूर्णतः अथवा अंशतः भाष्य किया। इन सबके पश्चात ऋग्वेद के प्रसिद्ध व्याख्याता सायणाचार्य का नाम आता है जिंहोने वेद-मंत्रों की अपनी व्याख्या में वेदों का अर्थ प्राचीन पद्धति के अनुसार निरुक्तियों के माध्यम से किया है।

टीका- टीकाकार अन्वय में दंडान्वय अथवा खंडान्वय पद्धति का आश्रय लेकर मूल पाठ का सरलार्थ परस्तुत करते हैं। साथ ही वे व्याख्या शास्त्र के आधार पर शब्दों की व्युत्पत्ति, कभी-कभी किसी विशिष्ट शब्द की सिद्धि का निर्देश पाणिनीय 'सूत्र' और विशेष कठिन शब्दों के अर्थ के लिए किसी कोश विशेषतः अमरकोश अथवा हलायुधकोश के हवाले दिए जाते हैं। टीका के उदाहरण निम्न है।..

दिवम् यदि प्रार्थयसे वृथाः, पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः

अथोययंतारमलं समाधिनाम् रत्नमन्विष्यति मृग्यते हितत.... कुमारसंभवम्, ५,४५

टीका- दिवम् स्वर्गम् कामयसे यदि तर्हि श्रमः तप्चरणप्रयासः वृथा निष्फलः। यदि स्वर्गार्थ तप्यते ततः श्रमम् माकार्षीः। कुतः? तप पितुः हिमवतः प्रदेशाः देवभूमयः स्वर्गपदार्थोः तत्रत्या इत्यर्थः। अथ उपयंतारंवरं प्रार्थयसे तर्हि समाधिना तपसा अलं न कर्तव्यः इत्यर्थ। निषेधस्य निषेध प्रति कारणत्वात् तृतीया। तथाहि रत्नम् कर्तृ नान्विष्यति न मृग्यते ग्रहीतृभिरिति शेषः। न हि रार्थ तवया तपसि क्वर्तीतव्यम्, किंतु तेनैव त्वदर्थमिति भावः। (संजीवनी टीका मल्लिनाथ)

इन व्याख्याओं से यह स्पष्ट होता है कि अनुवाद की प्रक्रिया बहुत पुराने समय से विद्यमान रही है। सर्वप्रथम यह निर्वचन से होते हुए निरुक्त, पदपाठ, भाष्य, टीका आदि से होकर गुजरते हुए अपने आधुनिक स्वरूप को प्राप्त हुई है। आज अनुवाद शब्द को जिस अर्थ में ग्रहण करते हैं वह संस्कृत में प्रयुक्त अनुवाद के अर्थ से थोड़ा भिन्न है। आज अनुवाद शब्द को अंग्रेजी के 'Translation शब्द के पर्याय के रूप में ग्रहण किया जाता है। अंग्रेजी का Translation शब्द भी लैटिन के दो शब्दों Trans and Lation के संयोग से बना है जिसका अर्थ होता है - 'पार ले जाना'। वस्तुतः अनुवाद में एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में ले जाया जाता है। अतः एक भाषा के पार (दूसरी भाषा) में ले जाने की प्रक्रिया के लिए ही Translation शब्द अंग्रेजी में प्रचलित हो गया। भारत की अलग-अलग भाषाओं में 'अनुवाद' के लिए अलग-अलग शब्द प्रयोग किए जाते हैं। जैसे- मराठी, असमिया, बंगला, गुजराती, पंजाबी, कन्नड आदि भाषाओं में अनुवाद के लिए परस्पर मिलते-जुलते शब्दों का प्रयोग किया जाता है। तेलगु में 'अनुवदर' या 'अनुवादम', उर्दू में 'तर्जुमा', कश्मीरी में 'तरजमु', सिंधी और गुजराती में 'तजर्म' और 'भाषांतर' शब्द मिलते हैं। तमिल में 'मोलि पेयरप्यु' यानी 'भाषांतर' शब्द प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक समय में अनुवाद का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। आज इसमें नए-नए काम हर रोज किए जा रहें हैं। साहित्य से लेकर सरकारी काम-काजों के साथ-साथ तकनीकी से भी यह जुड़ चुका है। अनुवाद में आज मशीनी अनुवाद का कार्य बहुत ही तेजी से हो रहा है। साथ ही साथ अन्य दूसरे कार्य भी किए जा रहें हैं।

अनुवाद के क्षेत्र में आज 'निर्वचन' का अध्ययन अनुवाद के एक प्रकार के रूप में किया जा रहा है। निर्वचन के लिए अंग्रेजी पर्याय रूप में 'Interpretation' शब्द का व हिंदी में 'आशु अनुवाद' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। बल्कि यही शब्द 'निर्वचन' की अपेक्षा ज्यादा प्रयोग किया जाता है। निर्वचन अर्थात आशु अनुवाद को आधुनिक प्रारिप्रेक्ष्य में पूरी तरह से समझने के लिए इसकी परिभाषा जो आधुनिक संदर्भ में प्रयोग की जा रही है निम्न है-

आशु अनुवाद

दो भिन्न भाषाओं के भावों एवं विचारों का तात्कालिक अनुवाद आशु अनुवाद या वार्तानुवाद कहलाता है और इसके अनुवादक को दुभाषीय कहा जाता है। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक की प्रतिभा अत्यंत महत्व रखती है। इस तरह के अनुवाद के लिए अनुवादक को स्रोतभाषा एवं लक्ष्यभाषा का पर्याप्त ज्ञान रखना अपेक्षित समझा जाता है। कभी कभी इसी अपेक्षित ज्ञान के अभाव में दुभाषिए की गलतियों के कारण बड़ा नुकसान हो जाता है।

आशु अनुवाद का कार्य बहुत ही कठिन कार्य होता है। आशु अनुवाद करते समय अनुवादक को अर्थात दुभाषिए को कुछ बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जैसे- आशु अनुवादक के लिए मात्र दो भाषाओं के ज्ञान होने से ही सब कार्य संभव नहीं हो सकता है उसको अपने विषय क्षेत्र का विशेषज्ञ होना चाहिए तभी वह शुद्ध अनुवाद करने में समर्थ हो सकता है। जैसे कि कोई भी भाषाविद् ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्यौगिकी, मानविकी, समाज-विज्ञान, विधि, वाणिज्य, पर्यटन, समाचार आदि अनुशासनों की वैज्ञानिक शब्दावली, तकनीकी शब्दावली और पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान न होने से उससे दुभाषीय होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस लिए आशु अनुवाद करने के लिए अनुवादक को इन तीनों प्रकार की शब्दावली का ज्ञान होना बहुत जरूरी होता है साथ ही साथ नए शब्दावलियों से भी वाकिफ होते रहना चाहिए और खुद को हमेशा तैयार रखना चाहिए। एक आशु अनुवादक से यह अपेक्षा की जाती है कि मुख्य वक्ता के हुए साहित्य तथा साहित्येतर संदर्भों के लिए लक्ष्य भाषा में तुरंत सटीक और संप्रेषणीय सर्वग्राह्य शब्द का विधान कर सके, जो प्रायः कर पाना असंभव सा होता है। इस स्थिति में दुभाषीय मूल से कतरा जाता है पर अगर उसे विषय की पर्याप्त जानकारी है तो वह तुरंत ही उसका समाधान ढूंढ लेता है। आशु अनुवादक के लिए वक्ता की बात को ध्यान से सुनना और समझना बहुत जरूरी होता है। इसके साथ पूर्वानुमान के आधार पर भाषण के अग्र अंश की संकल्पना कर लेना और

लक्ष्यभाषा में प्रस्तुत करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। इस प्रकार की स्थिति तभी संभव हो सकती है जब अनुवादक एक कुशल श्रोता हो तथा साथ ही साथ उसका ध्यान केन्द्रित होना चाहिए और विषय पर पकड़ होनी चाहिए। अनुवादक की अभिव्यक्ति की शैली भी स्पष्ट होनी चाहिए। आवाज में पूरी तरह स्पष्टता होनी चाहिए और बोलते समय भूलने की या भटक जाने की या आवाज लटपटाने की स्थिति नहीं होनी चाहिए।

सारांश रूप में यह स्पष्ट है की अनुवाद और निर्वचन एक दूसरे से गहरे संबन्धित हैं। आज आनुवाद का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है और निर्वचन का अध्ययन अनुवाद के एक प्रकार के रूप में किया जाता है परंतु अनुवाद परंपरा की शुरुआत निर्वचन की मौखिक परंपरा से होती है बाद में इसका लिखित रूप में भी प्रयोग होने लगा। आज अनुवाद इसका मुख्य केंद्र बन गया है। अनुवाद के अंतर्गत निर्वचन का प्रयोग एक बार फिर से मौखिक रूप में ही किया जाने लगा है और आज निर्वचन यानि आशु अनुवाद बहुत ही महत्वपूर्ण हो चुका है। इसके कई क्षेत्र विकसित हो चुके हैं, नियम और संभावनाएं भी विकसित हो गई हैं।

प्राकृतिक भाषा संसाधन में बहुशब्दीय अभिव्यक्तियों के अनुवाद की समस्याएं

(Translation Problem of Multi-Words Expressions in NLP)

विशेष श्रीवास्तव

सारांश

इस शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक भाषा संसाधन में बहुशब्दीय अभिव्यक्तियों के अनुवाद की जो समस्याएं हैं उनका विश्लेषण करना है। मशीनी अनुवाद करते समय इनमें आने वाली मुख्य समस्याओं को विभिन्न स्तरों पर देखा जायेगा। जब किसी मानव भाषा का तकनिकी या मशीनी क्षेत्र में उपयोग के लिए संसाधन किया जाता है तो इसे प्राकृतिक भाषा संसाधन कहते हैं। प्राकृतिक भाषा संसाधन किसी मानव भाषा को संगणक में स्थापित करने की प्रक्रिया है। इसमें प्राकृतिक भाषा शब्द का प्रयोग मानव भाषा के लिए किया गया है अर्थात मानव मुख से उच्चरित सभी भाषाएं प्राकृतिक भाषा कहलाती हैं। 'संसाधन' उस भाषा को संगणक में तार्किक अभिव्यक्तियों (logical expression) एवं व्यवस्थित और अधिक्रमित (systemic and hierarchical structures) के रूप में स्थापित करने की प्रक्रिया है। भाषा को तकनीकी और मशीन से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य प्राकृतिक भाषा संसाधन कर रहा है। प्राकृतिक भाषाओं को कंप्यूटर में स्थापित करना उतना सरल कार्य नहीं है जितना आरंभ में समझा गया। इसका प्रमुख कारण है भाषाओं की जटिल प्रवृत्ति। प्राकृतिक भाषा संसाधन में बहुशब्दीय अभिव्यक्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

शीर्ष शब्द **–** बहुशब्दीय अभिव्यक्ति, बहुशब्दीय अभिव्यक्तियां विविध रूप, बहुशब्दीय अभिव्यक्ति : अनुवाद और समस्याएं।

परिचय

प्राकृतिक भाषा मानव भाषा का अभिन्न अंग है। मानव के बीच परस्पर संवाद स्थापित करने और सूचनाओं को लिपिबद्ध करने का यह एक प्रमुख साधन है। इसके माध्यम से मानव जटिल, सूक्ष्म, गहन और व्यापक विचारों को भी आसानी से अभिव्यक्त करने में सफल हो जाता है। भाषा विज्ञान में इसे व्यवस्थाओं की व्यवस्था कहा गया है। किंतु यह हमारे जीवन के साथ इस तरह गुथी हुई है कि हम इसकी शक्ति और प्रभाव

को अनदेखा कर देते हैं। अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान इसी को आत्मसात करने के लिए प्रयत्नशील है। प्राकृतिक भाषाविज्ञान अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का ही एक अंग है, इसका उद्देश्य कंप्यूटर के ऐसे व्यापक माडल और डिज़ाइन तैयार करना है जिनकी सहायता से मानव-मशीन में संवाद स्थापित हो सके। अधिकांश मानव संवाद मौखिक या लिखित रूप में होते हैं। इसलिए प्राकृतिक भाषा संसाधन का सर्वप्रथम लक्ष्य तो यही है कि इसकी सहायता से लिखित पाठ या मौखिक भाषा का विश्लेषण किया जा सके। इसके लिए प्राकृतिक भाषा को समझना आवश्यक है। प्राकृतिक भाषा संसाधन कंप्यूटर विज्ञान, कृत्रिम बुद्धि और भाषाविज्ञान का क्षेत्र है तथा यह मानव भाषाओं और कंप्यूटर की अंतःक्रियाओं से संबंधित है। प्राकृतिक भाषा संसाधन में कंप्यूटर के द्वारा मानव उच्चरित भाषाओं का संसाधन किया जाता है। सामान्यतः सभी योगात्मक भाषाओं में कुछ ऐसी इकाईयाँ प्राप्त होती हैं जिनमें रचना की दृष्टि से एक से अधिक शब्द तो दिखाई पड़ते हैं किंतु वे एक साथ आकर जो अर्थ देते हैं वह अर्थ उन शब्दों के मूल अर्थ (अलग-अलग प्राप्त मूल अर्थों) से भिन्न होता है। इस प्रकार की रचनाओं को 'बहुशब्दीय अभिव्यक्ति' नाम दिया गया है। प्राकृतिक भाषा संसाधन में शब्द और इससे संबंधित नियमों के संसाधन के साथ-साथ इस अभिव्यक्तियों की पहचान और विश्लेषण से संबंधित नियमों की स्थापना भी आवश्यक हो जाती है।

बहुशब्दीय अभिव्यक्ति (Multiword Expression) - बहुशब्दीय अभिव्यक्ति शब्द से तात्पर्य एक से अधिक शब्दों से मिलने वाली अभिव्यक्ति से है। इसमें अभिव्यक्ति शब्द से अभिप्राय है : 'वह इकाई जो स्वतंत्र रूप से अपना एक अर्थ दे'। सामान्यतः प्राकृतिक भाषा संसाधन प्रणाली में प्रत्येक शब्द को एक स्वतंत्र शाब्दिक इकाई माना जाता है। संरचनात्मक दृष्टि से विवेचन करते हुए ब्लूमफील्ड (1933) ने शब्द को 'minimal free form' कहा है। किंतु बहुशब्दीय अभिव्यक्तियाँ ऐसी इकाईयाँ हैं जिनमें एक से अधिक शब्द मिलकर अपने स्वतंत्र अर्थों से निरपेक्ष कोई विशिष्ट अर्थ देते हैं। एक सामान्य भाषा-भाषी को इन्हें समझने और व्यवहार करने में कोई कठिनाई नहीं होती किंतु प्राकृतिक भाषा संसाधन में इनकी पहचान और विश्लेषण का कार्य बहुत कठिन हो जाता है।

श्रीराम वेंकटपति और अरविंद कुमार जोशी के अनुसार, "Multi-word Expression (MWEs) are those whose structure and meaning cannot be derived from their component words, as they occur independently." (Sriram and Joshi 2005:01)

विनित कुमार विरला और अन्य ने बहुशब्दीय अभिव्यक्तियों को विशेष प्रकार के पदबंध बताते हुए कहा है कि... "Multi-word Expressions are phrase that are not entirely predictable on the basis of standard grammar

and lexical entries".[66] इस प्रकार कहा जा सकता है कि बहुशब्दीय अभिव्यक्तियाँ किसी भी वाक्य में आने वाली ऐसी अभिव्यक्तियाँ हैं जिनमें एक से अधिक शब्द इस प्रकार से आते हैं कि उनके बीच अंतराल/खाली स्थान हो; किंतु वे एक साथ मिलकर जो अर्थ देते हैं वह उनके सामान्य एवं स्वतंत्र अर्थ से भिन्न होता है। जैसे-

आइए, कुछ चाय पानी कर लिया जाय।

उसने देखते देखते मेरे ही ऊपर प्रश्न खडा कर दिया।

मैंने उस उल्लू के पट्ठे को मना किया था।

उपर्युक्त वाक्यों में रेखांकित शब्दों में विशिष्ट अर्थों को देखा जा सकता है। यथा; 'चाय पानी' का अर्थ 'चाय' और 'पानी' न होकर नाश्ता आदि से है। 'देखते देखते' का अर्थ 'बार बार देखने' से न हो कर 'धीरे धीरे समय बीतने' से है और 'प्रश्न खड़ा' करने का अर्थ 'दोष लगाना' से है। तीसरे वाक्य में 'उल्लू जा पट्ठा' रू□गत या मुहावरागत प्रयोग है जिसका अर्थ 'मूर्ख' है। वास्तव में शब्दों के इस प्रकार के प्रयोग भाषिक प्रयोगों के वाक्यात्मक और आर्थी विश्लेषण (syntactic and semantic analysis) में समस्या उत्पन्न करते हैं।

बहुशब्दीय अभिव्यक्तियाँ विविध रूप – **(Multi-word Expressions: Various Forms)** बहुशब्दीय अभिव्यक्ति किसी भी भाषा में पाये जाने वाली एक महत्वपूर्ण इकाई है। वर्तमान में प्राकृतिक भाषा संसाधन की प्रक्रिया के दौरान इनकी 'महत्वपूर्ण स्थिति' और 'पहचान एवं विश्लेषण' में आ रही समस्याओं के कारण इनका अध्ययन समेकित रूप से किसी एक इकाई के रूप में करने की आवश्यकता महसूस की गई। बहुशब्दीय अभिव्यक्तियाँ भाषा में भिन्न भिन्न रूपों में प्राप्त होती हैं। बहुशब्दीय अभिव्यक्तियों की अभिव्यक्ति रूप बहुत ही जटिल हैं। हिंदी में पाई जाने वाली बहुशब्दीय अभिव्यक्तियों के प्रमुख विविध रूप निम्नलिखित हैं;

1- ***नाम पद (Name Entities)*** - प्राकृतिक भाषा संसाधन में किसी भी पाठ के लिए 'नाम पद चिह्नन' (Name Entity Recognition) एक आवश्यक अंग होता है। इसके लिए प्रयोग में लाए जाने वाले मॉड्यूल को 'नाम पद चिह्नक' (Name Entity Recognizer) कहा जाता है। किसी भी भाषा में किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु, संगठन, स्थिति आदि को व्यक्त करने वाले नाम पाये जाते हैं। जैसे; उदय शंकर भट्ट, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आदि। भाषा से संबंधित अनुप्रयोग में इन नामों को जैसे का तैसे छोड़ दिया जाता है।

[66] Birla, Vineet Kumar, Shukla Mohd. Nabeel, Shukla V.N., Multiword Expression Extraction – Text Processing, पृ. 01

जैसे प्राकृतिक भाषा संसाधन के अनुप्रयोग क्षेत्र में मशीनी अनुवाद करते समय इन नामों का अनुवाद न करके केवल लिप्यंतरण कर दिया जाता है।

2- ***मुहावरे और लोकोक्तियाँ*** ***(Idioms and phrases)*** – मुहावरे और लोकोक्तियाँ किसी भी भाषा की रूढ़ इकाइयां होती हैं। इन इकाइयों के निर्माण में एक से अधिक शब्द मिले होते हैं और वे अपना स्वयं का अर्थ ने देकर किसी पारंपरिक रूप से प्रचलित अलग अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं। जैसे- हिंदी में 'रोंगटे खड़े होना' और 'पुलकित होना' दो अलग-अलग मुहावरे हैं। वाच्यार्थ की दृष्टि से समानार्थी हैं। किंतु 'रोंगटे खड़े होना' का प्रयोग 'भय' की अभिव्यक्ति के लिए होता है और 'पुलकित होना' का हर्ष और आनंद की अभिव्यक्ति के लिए। इस प्रकार के लोकोक्ति मुहावरों का जब हम मशीनी अनुवाद करते हैं तो कंप्यूटर को इनके मूल अर्थ को समझ नहीं पाता है और अनुवाद सही रूप से नहीं कर पाता है।

3- ***परसर्गीय पदबंध*** ***(Postpositional Phrases)*** - एक से अधिक परसगों अथवा एक परसर्ग और दूसरे अन्य व्याकरणिक कोटी के शब्दों के मिलने से बनने वाली इकाई को 'परसर्गीय पदबंध' कहते हैं।

4- ***प्रतिध्वन्यात्मक अभिव्यक्तियाँ*** ***(Echoic Expressions)*** - प्रतिध्वनि अभिव्यक्तियाँ प्रायः एक से अधिक शाब्दिक इकाइयों द्वारा निर्मित होती हैं। अतः इन्हें भी बहुशब्दीय अभिव्यक्तियों की श्रेणी में रखा जाता है। जैसे- छन छन, खट खट, सांय-सांय, कल-कल करना, गड़-गड़ करना, फूस-फूस होना आदि।

प्रतिध्वन्यात्मक अभिव्यक्तियों में प्रायः किसी शब्द की पुनरुक्ति होती है। प्रतिध्वन्यात्मक अभिव्यक्तियाँ एकाधिक प्रकारों से निर्मित होती हैं। जैसे-

हर्ष में- आह-हा, वाह-वाह आदि।

दु:ख में- आह निकल पड़ना, सी-सी करना, हाय-हाय मचाना, आदि।

घृणा में- छि-छि करना, थू-थू करना।

पशु वर्ण की ध्वनियाँ- भों-भों, में-में, टर-टर

पक्षी और कीट पतंगों की ध्वनियाँ - कांव-कांव, कुकड़ू-कू, भिन्न-भिन्न

इन सारी अभिव्यक्तियों का जब हम प्राकृतिक भाषा संसाधन करते हैं तो समस्याएँ आती हैं। क्योंकि मनुष्य इन सारे शब्दों के अर्थ और अभिप्राय को समझ लेता है लेकिन जब इसका मशीनी अनुवाद करना होता है तो कंप्यूटर को इनको समझाने में समस्याएँ आती हैं।

5- ***सहप्रयोग*** ***(Collocations)*** - सहप्रयोग का महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि एक 'सहप्रयोग' में आने वाले सभी शब्दों के शब्दभेद स्पष्ट होते हैं। ये शब्द अपने आर्थी लक्षणों, सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से समानता

असमानता आदि की दृष्टि से साथ-साथ प्रयुक्त होते हैं। जैसे- अश्त्र शस्त्र, बाग बगीचा, रात दिन, लाल पीला, दाने दाने, कदम कदम, चाय वाय, अलग थलग, रंग बिरंगे आदि।

वह दाने दाने को मोहताज हो गया।

मेरी बात सुनकर वह लाल पीला होने लगा।

6- ***वर्गाभिव्यक्तियाँ (Class Expressions)***- हिंदी में कुछ बहुशब्दीय अभिव्यक्तियों का निर्माण समान वर्ग के एक से अधिक प्रकार के शब्दों के मिलने से होता है। जैसे- इधर उधर। कुछ विद्वानों द्वारा इस प्रकार की अभिव्यक्तियों को वर्गाभिव्यक्ति कहा गया है।

7- ***पुनरुक्ति (Reduplication)***- जब किसी वाक्य में एक शब्द लगातार दो बार प्रयुक्त होता है तो उसके प्रयोग की उस स्थिति को पुनरुक्ति कहते हैं। लगभग सभी भाषाओं में कुछ विशेष प्रकार की पुनरुक्ति पाई जाती है। मुख्य रूप से पुनरुक्ति के दो प्रकार किए गए हैं। पूर्णतः पुनरुक्ति और आंशिक पुनरुक्ति।

पूर्णतः पुनरुक्ति- जब वाक्य में पूरा का पूरा शब्द दो बार आए तो इस प्रकार की पुनरुक्ति को पूर्णतः पुनरुक्ति कहा जाता है। जैसे-

मेरे <u>कदम कदम</u> पर कांटे हैं।

उससे थोड़ा <u>धीरे धीरे</u> चलने को कहो।

आंशिक पुनरुक्ति- इस प्रकार की पुनरुक्ति में केवल एक शब्द अर्थपूर्ण होता है। दूसरे शब्द में आंशिक रूप से प्रथम शब्द के ध्वनियों का अनुकरण होता है। जैसे-

अरे भाई, इन्हें <u>चाय वाय</u> पिलाइए ।

कभी तो <u>ठीक ठाक</u> से रहा करो।

हमारा काम <u>सालों साल</u> चलेगा।

मेरा भाई <u>रातों दिन</u> अब मेहनत करेगा।

उनके बीच <u>तू - तू मैं - मैं</u> हो गई।

बहुशब्दीय अभिव्यक्तियाँ: अनुवाद और समस्याएं (Multi-word Expressions: Translation and Problems)- मशीनी अनुवाद प्राकृतिक भाषा संसाधन के प्रमुख अनुप्रयोगों में से एक है। मशीनी अनुवाद भाषाई ज्ञान के मशीनी अनुप्रयोग का सबसे बड़ा क्षेत्र है। इसमें एक भाषा के पाठ का दूसरी भाषा के पाठ में अनुवाद करते समय मशीनी अनुवाद प्रणाली को बहुशब्दीय अभिव्यक्तियों के अनुवाद की समस्या से जूझना पड़ता है। बहुशब्दीय अभिव्यक्तियों के अनेक रूप होते हैं। हिंदी में अभिव्यक्तियाँ कई रूपों में प्राप्त होती हैं किंतु अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में इनके समानार्थी शब्द बहुत ही कम या नहीं के बराबर मिलते हैं। इस प्रकार जब हम इनका

अनुवाद करते हैं तो इसमें समस्याएं आती हैं। मशीनी अनुवाद के संदर्भ में देखते हैं तो इन शब्दों के अर्थ को ही कंप्यूटर को समझना मुश्किल कार्य हो जाता है। कई जो शब्द होते हैं उनके अर्थ उनसे भिन्न होते हैं। लोकोक्ति मुहावरों में तो यह विशेष करके होता है। ऐसे में कंप्यूटर उसमें निहित अर्थो को नहीं समझ पाता है और अनुवाद कार्य में समस्या उत्पन्न हो जाती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

तकनीकी विकास की दिशा में कंप्यूटर का आगमन एक क्रांतिकारी घटना है। इसका मानव व्यवहार के सभी क्षेत्रों में सहज ही प्रवेश हो गया है। मानव समाज के आपसी व्यवहार के प्रत्येक कार्य में भाषा की आधारभूत भूमिका होती है। कंप्यूटर में मानव भाषाओं के ज्ञान को स्थापित करने के लिए एक पूरी व्यवस्थित प्रक्रिया अपनानी पड़ती है जिसे प्राकृतिक भाषा संसाधन कहा जाता है। मानव भाषा के संरचनात्मक ज्ञान को इस रूप में स्थापित करने का दौरान कुछ समस्याएं उभर कर सामने आई हैं जिनमें 'बहुशब्दीय अभिव्यक्ति' भी एक है। प्राकृतिक भाषा स्वभाव से ही अस्पष्ट और जटिल है और जब हम इसका अनुप्रयोग मशीनी अनुवाद के संदर्भ में करने जाते हैं तो इसकी जटिलता और बढ़ जाती है। अनुवाद एक बौद्धिक प्रक्रिया है जिसकी क्षमता केवल मनुष्य के पास है। संगणक को भाषाई ज्ञान (सामाजिक सांस्कृतिक, लोकोक्ति मुहावरों, अनेकार्थी शब्दों) का अभाव होने के कारण अनुवाद में समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

संदर्भ सूची -

1- गोस्वामी, कृष्ण कुमार (2007) ***आधुनिक हिंदी : विविध आयाम,*** दिल्ली : आलेख प्रकाशन ।

2- मल्होत्रा, विजय कुमार (2013) ***कंप्यूटर के भाषिक अनुप्रयोग,*** दिल्ली : वाणी प्रकाशन ।

3- सिंह, सुराजभान (2006) ***अंग्रेजी - हिंदी अनुवाद व्याकरण,*** नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन ।

4- Bentivogli, Lusia, Pianta, Emanuele, ***Detecting Hidden Multiword's in Bilingual Dicitionaries.***

5- Birla, Vineet Kumar, Shukla Mohd. Nabeel, Shukla V.N., ***Multiword Expression Extraction – Text Processing.***

6- Blaheta, Don and Johnson, Mark (2001) ***Unsupervised learning of multi-word verbs,*** Brown University,

7- Ivan A. Sag et. Al. (2003) ***Multiword Expressions: A Pain in the Neck For NLP?*** A Part of LonGO Projrct, Stanford University (http://lingo.stanford.edu)

8- en.wikipedia.org/wiki/**Natural_language_processing**

Semantic Componential Analysis Approach for Hindi-English Translation

(Especially focus on Commercial Hindi Headline use in Newspaper)

Yogesh Vijay Umale

Abstract

This research paper is describe the structure of commercial Hindi Headlines use in newspaper like, *sonaa men uchaala*, (the surge in gold) *sheyara baajaara men mandii,* (like the stock market) *chaandee lidhakii* (silver down) *baajaara khaamosha* (sluggish market), that headline use as data. The componential Analysis is one kind of Semantic approach that approach to deal with semantic feature of natural language. When we take commercial Hindi Headline as sentence than we try to do translation them into English than we find translation problems and that problem may be language structure, ambiguity and other linguistic problems. I have used componential analysis theory for analysis of the Hindi headline and I find out semantic factures, now here I have seen only two kinds of facture increase (+) and decrease (-), then we will see the Hindi newspapers, especially industrial Colum they use that kind of headlines, but that kind of sentence (headline) is ambiguous, when we do translate them Hindi to English. Now I have to use componential analysis theory for solving the translation problem. the Componential analysis theory is 70 to 75 percent may be solve the problem and find out the semantic features like, increase (+) and decrease (-) and that semantic feature doing an important role in translation process.

Key words

1. Functional Hindi
2. Translation Problems: Hindi-English
3. Componential Analysis A Semantic Approach

Introduction

Translation is one most important applied area of Linguistics, which deal with natural language means the translation is process, its one language (source) text to translate to other language (target). When we do translation, then we need linguistics knowledge of both languages without that knowledge we did not do the translation when we talk about linguistics knowledge so we find out phonetics level, Morphological level, sentence level and semantic level. The translation process needs Morphological level, sentence level and semantic level, if we have that kind of linguistics knowledge, then may we can do translation depend on the Domain the Domain also a crucial factor of translation. This paper domain is functional Hindi, especially commercial Colum of *Danaik Bhaskar* Hindi news paper Nagpur Edition.

Functional Hindi

"The official language of the Union shall be Hindi in *Devangari* script" this is provided by article 343 (1) of the Indian constitution. Article 343 said, the language for the time being authorized for use in the union for official purpose shall be the official language for communication between one state and another state and between a state and the union. However, a significant fact should be kept in mind that while the constitution accepts Hindi as the principle official language of the Union an English as the associate official language is also a promotion and development of other languages (seminar report, Functional Hindi. CHI, Agra, 1974)

The Hindi has varied area in India, The geographical we can see Hindi has communication language in Uttar Pradesh, Bihar, Madhya Pradesh, Rajasthan, Haryana, Himachal Pradesh and Delhi. the Functional Hindi is one part of Hindi language within Hindi, today the Hindi has a variety of dialects like, *Bhojpuri, avadhii, birja, raajashthaanii,haraanvii* etc within that dialect *khahdibolii* is the standard dialect of Hindi but Functional Hindi is one part of Hindi Language means Hindi is general language for people as communicating the purpose and Functional Hindi is purpose of the Science, Technology, Education, Government Office, Banking, Low, administration, mass media in this field using that language called Functional Hindi. When we compared general Hindi and functional Hindi then we finds out the difference and that may be structured level, sentence level, morphological level, lexical level etc.

the functional Hindi has deal with, which type of Hindi we have use of the domain of Science, Technology, Education, Government Office, Banking, Low, administration, mass media, for those purpose Functional Hindi has their own vocabulary, structure of sentence, letter writing, etc, depend on the domain we can use that vocabulary, structure of sentence, letter writing in functional Hindi.

The newspaper is an important area of mass media because news paper exhibits what happed and what's going in our society; the news collecting, writing of headlines, skills of news writing are one part study area of functional Hindi. The newspaper also divided in three level national levels, state level and local level. When we look at the newspaper structure than we find out the main page, sport page, commercial page, local news, editorial page etc. in this paper I have exhibits commercial Hindi Headline,

.	Hindi Headlines	Hindi Meaning
1	*sonaa* ***uchhalaa***	*tejii se upar jaanaa, ucaal,uchaala ki kiryaa*
2	*caandii* ***luDhakii***	*giranaa, jhukanaa, mara jaanaa, cakkara khaate huv badhanaa*
3	*sheyar baajaar* ***camake***	*Camane kii kiryaa, prakaash, rosanii, caukane kii kiryaa*
4	*baajaar* ***khaamosh***	*acaanaka shanta honaa, baat karate samaya rukha jaanaa*

5	*soyabiin aur kapaasa men **tejii***	*tej hone kii avasthaa, mahangi, shiighrataa, ugrataa, tiivartaa*
6	*dalahaal men bhaarii sudhaara*	*sanshodhana, priivaratana, doSa dura karanaa*
7	*veishviyaka teji ke bica sonaa aur caandii **majabuta***	*achchii pakaDa honaa, shaktiishaalii, puktii*
8	*sonaa 20 hajaara ke niice **phisalaa***	*nice giranaa,phisalane kaa bhaava, nice kii or jaanaa*
9	*rijarva bank ne diyaa sheyara ko **jhatakaa***	*bevakufa banaanaa, halakaa dhakkaa, aaksmiika aur aalpakaaliik biimarii, acaanaka aaii biimarii*
10	*sonaa-caandii men golbala mandii*	*dhiimii, susta, manda kaa bhaava*
11	***caandii Tutii***	*khandiita honaa, gatii rukha jaanaa, haDdii kaa joD alaga honaa*
12	*mahagai se sheyara baajaara **past***	*thakaa hivaa, haaraa huvaa, jhukaa huvaa*
13	*sonaa **narama** caandii men **uchaal**, daala **teja***	*1 mulayama, komala, mrudula* *2 tejii ke saatha nice se upara uthanaa,ucaaii, uchaal kii kiryaa* *3 tej hone kii avasthaa, prabaltaa,mahagaa*
14	*mudrasphiitii par **kasegaa shikanjaa***	*pakada banaanaa, kasane kaa artha*
15	*Soyaabiin **pichche hate**, udata aur munga men **naramii***	*1 pichche haTane kii avasthaa, haara maananaa* *2 narama hone kii kiryaa, komalataa*
16	*shakkara men **giraavat,** gehu **manda***	*1 girane kii avasthaa, patina* *2 dhimi, susta honaa, manda hone kaa bhava*
17	*aayodhyaa ke phaisale ke baada sheyaro men **chamaka***	*camakane ki kiryaa, prakaasha, roshanii,jhatakaa lagane se hone valaa darda*
18	*nagapura men sonaa **narama** caandii **garama***	*1 mulayama, komal, murdula* *2 tapaa huvaa, utejaka, bhava men tejii*
19	*beiko ke natiijo ne badai baajaara kii reinaka*	*sundara varN ki aakrutii, camaka damaka aur shobha, jamghaTa, bahara*
20	*sheyara baajaara men nava varsa kaa **khumaara utaraa***	*Nashaa, mad, nashaa dur karanaa*
21	***oudhe muh gire** sonaa caandii*	*muh yaa sira nice kiyaa huvaa, nice ho jaanaa, giraa huvaa*
22	*giraavaaTa kii aandhii me **udhaa baajaar***	*pankha ke sahare havaa men uDhanaa, havaa ke saatha Dolanaa-phiranaa, bikharanaa, laharanaa*

23	*2012 ke mausama kii **khataa** 2013 bhugategaa **sajaa***	*1 aparaadha, kasur,bhula* *2 badalaa, karavaasa*
24	*nai skimo ke satha naino ko **lage pankha***	*par, jaise cidiyaa ke pakhaa nikala aanaa*
25	*mahagai se kaar bikrii ki raphataar para **brek***	*vahaan rukhaane ke liye prayoga kiyaa gayaa upakaraNa, rukanaa*

Above the data exhibits, commercial Hindi Headline of *Dainik Bhaskar* News paper, if look at the headlines then we find most of this kind of headline use in commercial Colum

Translation Problems: Hindi-English

Today in linguistics and translation studies researcher is doing research in Problems of Translation of natural language. the research finds out the structure of Languages, Typological feature, semantic feature, words using in domain area, cultural words, ambiguity are two types one is lexical ambiguity and the second is syntactic ambiguity etc. consider the following example and that example using in the commercial area of Hindi Headline,

nagapura men sonaa **narama** caandii **garama**
Nagpur in gold soft silver hot
Gold soft silver hot in Nagpur

above the example taken from data when we take that sentence and try to translate Hindi to English than we get the Problem because when we look at the words *sonaa naram* and *chandii garama* than we get equivalent in English is gold soft and silver hot, but that is not a good translation, for the good translation we need knowledge about Domain Area, Linguistics idea and both language good knowledge. Here *sonaa narama* means not a gold soft and *caandii garam* means not a silver hot, this is the structurally fine construction, but semantically that construction is wrong because *narama* and *garama* is not sense of soft and hot in English.

When we look at domain area of that headline than we find that domain area is commercial so in this area they people give the information about price and *narama* and *garama* give the information about price is a increase and a decrease not a hot and soft.

Componential Analysis

Componential Analysis is one kind of Semantic approach and this semantic approach talk about semantic feature or component of words and describes meaning in language. Jackson in "Words and their meaning"(1996:83) dan Nida in "Componential analysis of meaning (1975:32) they describe two types of component, now we are considering following example,

man, woman, boy, girl now hear what is component or feature of these four items and how can analysis these item in semantics, now following table shows the results,

Components	Man	Woman	Boy	Girl
[human]	+	+	+	+
[adult]	+	+	-	-
[male]	+	-	+	-

In the semantic domain of man, woman, boy and girl [human] is the common component and they are distinguished by [adult], [male] as the diagnostics components. The meaning of the individual items can then be expressed by combinations of these features:
Man +[human] +[adult] +[male]
Woman +[human] +[adult] -[male]
Boy +[human] -[adult] +[male]
Girl +[human] -[adult] -[male]

the above semantic approach of Componential analysis I use for analysis the Hindi Headline use in the commercial domain of the newspaper and that approach is use useful and give the best result of translation of Hindi-English. however, that approach describes the semantic feature and I find out that semantic feature is the price and whole domain of newspaper also give the information about price of rate that why this approach working for translation process when we translate Hindi Headline to English language than first we look at feature of that word like *sonaa narama* means not a gold soft so here semantic property of that word is gold price decrease and *chandii garama* means is not silver hot hers semantic property of this is silver price is increasing. Depend on this analysis I analysis all headline and provide their semantic feature and that feature is helpful for translation of the Hindi to English. Consider the following semantics features,

.	Hindi Headlines	Semantic Feature of price + is Increase and – is decrease
1	*sonaa* ***uchhalaa***	+
2	*caandii* ***luDhakii***	-
3	*sheyar baajaar* ***camake***	+
4	*baajaar* ***khaamosh***	-
5	*soyabiin aur kapaasa men* ***tejii***	+
6	*dalahaal men bhaarii* ***sudhaara***	+
7	*veishviyaka teji ke bica sonaa aur caandii* ***majabuta***	+
8	*sonaa 20 hajaara ke niice* ***phisalaa***	-
9	*rijarva bank ne diyaa sheyara ko* ***jhatakaa***	-

10	*sonaa-caandii men golbala* ***mandii***	-
11	*caandii* ***Tutii***	-
12	*mahagai se sheyara baajaara* ***past***	-
13	*sonaa* ***narama*** *caandii men* ***uchaal****, daala* ***teja***	1 - 2 + 3 +
14	*mudrasphiitii par* ***kasegaa shikanjaa***	+
15	*Soyaabiin* ***pichche hate****, udata aur munga men* ***naramii***	1 - 2 -
16	*shakkara men* ***giraavat****, gehu* ***manda***	1 - 2 -
17	*aayodhyaa ke phaisale ke baada sheyaro men* ***chamaka***	+
18	*nagapura men sonaa* ***narama*** *caandii* ***garama***	1 - 2 +
19	*beiko ke natiijo ne badai baajaara kii* ***reinaka***	+
20	*sheyara baajaara men nava varsa kaa* ***khumaara utaraa***	-
21	***oudhe muh gire*** *sonaa caandii*	-
22	*giraavaaTa kii aandhii me* ***udhaa*** *baajaar*	+
23	*2012 ke mausama kii* ***khataa*** *2013 bhugategaa* ***sajaa***	1 - 2 -
24	*nai skimo ke satha naino ko lage* ***pankha***	+
25	*mahagai se kaar bikrii ki raphataar para* ***brek***	-

Conclusion

Semantic feature doing an important role in nature language which provide use a meaning of natural language. Componential analysis is one kind of semantic approach and that approach provides us semantics features and that feature useful for Hindi to English translation domain of the commercial area of the newspaper.

Reference

1. Allan,k. (2011). *Natural language semantics.* Blackwell: Oxford.
2. Arichison.J. (2003). *Word in mind introduction to the mental lexicon.* Blackwell:Oxford.
3. Baldinger,K. (1980). *Semantic theory*. Blackwell: Oxford.
4. Goswamii,K. (2008). *Anuvaada vigyaaNa kii bhumikaa. Rajkumar Prakaashana*: New Delhi
5. Jackson, H. (1996). *Words and their meaning*. New York:Addison Wesley Longman Inc.

6. Katz,J.J. (1972). *Semantic theory*. Harper and Row: New York
7. Lyons,J. (1977). *Semantic volume 1 and 2*. Cambridge University Press: New York.
8. Nida, Eugene A. (1975). *Componential Analysis of Meaning*. Belgium: Mouton.
9. Pandey,A. and Pandey,A.(2005). *Prayojanak Hindi. Ashisha Prakaashana:*Kanpur.
10. Sonthakke,M.(2009). *Prayojanak Hindi. Lokabharathii Prakaashana:* Allahabad.

वऱ्हाडी बोली में आगत हिंदी शब्दों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन

विद्या चंदनखेड़े*

सारांश

भाषा या बोली एक व्यवस्था होती है। पारिभाषिक धरातल पर आदान व्यवस्थाओं के बीच होने वाली प्रक्रिया है। आदान (lone) को ही दूसरे शब्दों को आगत कहते है। वैसे ही वऱ्हाडी बोली मराठी भाषा की एक बोली है। जिसमें हिंदी का प्रभाव होने के वजह से हिंदी शब्दों का आगमन हुआ है। वऱ्हाडी बोली में जो हिंदी शब्द आए हैं वे कैसे आए हैं, इसका ध्वनि, रूप, शब्द तथा वाक्य स्तर भाषा वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण इस शोध आलेख में दिखाया गया है।

भूमिका

भूमंडलीकरण के दौर में मानव समाज प्रगति की ओर अग्रसर है। नव आर्थिक नीति ने मानव समाज को आर्थिक रूप से मजबूत तो किया ही है बल्कि सामाजिक स्थिति भी पिरामिड की ऊपरी चोटी तक पहुंच चुकी है। परंतु विडम्बना यह है कि मानव समाज संस्कृतिकरण के दौर में अपने (क्रीमी लेयर) कहे जानी वाली भाषाओं एवं बोलियों का विकास कर सका है। तमाम ऐसी चीजें यथा भाषाएँ संस्कृति इत्यादि जो मानव की नींव को मजबूत करती है, हाशियाकृत हो रही है।

भारत की 3000 साल की प्राचीन संस्कृति की जड़े इसकी क्षेत्रीय अंतरंगता पर टिकी हुई है। विभिन्न सभ्यता अपनी विशिष्ट पहचान बना कर इतिहास के पन्नो में स्थान पा चुकी है। भारतीय प्राचीन सभ्यता की मजबूती के कारण इसकी अपनी विशिष्ट संकृति, सौहार्दता, भाषा, खाना-पान पर टिकी हुई है।

धीरे-धीरे औद्योगीकरण ने भारतीय समाज के आर्थिक आधार को मजबूती प्रदान की लेकिन सांस्कृतिक आधार को धीरे-धीरे नष्ट प्राय कर डाला। भारत को अनेकता में एकता (unity in diversity) का देश माना जाता है, परंतु विभिन्न भाषाएँ, संस्कृतियाँ और बोलियाँ तो आज लुप्त हो रही है। मुख्य भाषाएँ और बोलियाँ तो आज भी साँस ले रही हैं परंतु तमाम ऐसी भाषाएँ और बोलियाँ जो आदिवासी एवं प्रादेशिक थी वो अपना अस्तित्व

खोती जा रही है। भारत की विश्व में पहचान के प्रतीक थे सारी चीजें के कगार पर है क्योंकि कुछ भाषाएँ और बोलियाँ आज भी अपने जीर्णोध्दार के लिए तरस रही हैं।

गौरतलब है कि उन्हें बोलने वाले मानव समाज की संख्या भी सर्वाधिक है परंतु उनका अस्तित्व खतरे में है। यह शोध आलेख भारतीय समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता है कि भारतीय सभ्यता के आधार कहे जाने वाले अनगिनत बोलियाँ एवं भाषाओं की रक्षा करना बहुत आवश्यक है। ताकि विश्व में हमारी सभ्यता चिरंजीवी रहे।

वैसे ही वऱ्हाडी बोली महाराष्ट्र राज्य के विदर्भ प्रांत में बोले जानेवाली एक प्रमुख बोली है। जो प्रमुख रूप से विदर्भ के ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाती है। वऱ्हाड और मध्य प्रांत के दक्षिण क्षेत्र में बोली जाने वाली इस बोली का क्षेत्र विस्तृत है। इस बोली का भाषाई क्षेत्र बुल□ाणा जिले के पूर्वी भाग से वऱ्हाडी से ताप्ती नदी तक फैला है और वहाँ से पूर्व कि तरफ एलिचपुर, बैतुल, छिंदवाड़ा, शिवनी, बालाघाट आदि का दक्षिण भाग वऱ्हाडी बोली में आता है। वऱ्हाडी बोली प्रमुख रूप से बुल□ाणा, अकोला वाशिम, यवतमाल, और वर्धा के पश्चिम भाग तक बोली जाती है। "परंपरा से जाने के कारण इसका वऱ्हाड नाम पड़ा है। जार्ज गिर्यसन द्वारा किए गए सर्वेक्षण में इस बोली को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

वऱ्हाडी बोली को प्राचीन माना गया है। इसका प्रमाण लीलाचरित्र, गोविंद प्रभुचरित्र आदि आद्य महानुभावीय ग्रंथ में मिलता है। विदर्भ कि बोली में कहीं न कहीं हिंदी का प्रभाव दिखता है। वऱ्हाडी के शब्द संग्रहों में हिंदी शब्दों का प्रयोग अधिक होता है। वऱ्हाडी कि वर्ण प्रक्रिया में स्वर के संदर्भ में विचार करें तो वऱ्हाडी में अत्यंत दीर्घ स्वर, ह्रस्व उच्चरित होता है। साथ ही ए, अ, और य का भी परिवर्तन दिखाई देता है। जिसके कारण निम्नलिखित हैं –

1- वऱ्हाडी क्षेत्र जो कि पूर्व में मध्यप्रदेश का भाग था और मध्यप्रदेश में हिंदी भाषा बोली जाती है। जब विदर्भ प्रांत महाराष्ट्र में सम्मिलित हुआ तब हिंदी भाषा में ने वऱ्हाडी भाषा को प्रभावित किया अर्थात हिंदी के शब्द वऱ्हाडी बोली में प्रयुक्त होने लगे ।

2- जब भारत अंग्रेजों का शासन था उस समय मध्यप्रदेश के लोग और मराठी लोग एक साथ काम करने लगे इसी वजह से मराठी भाषा पर हिंदी भाषा का असर दिखने लगा।

3- भारत का केंद्र स्थान नागपुर शहर होने की वजह से यहाँ हिंदी बोलने वालों की संख्या ज्यादा है। इसलिए आस-पास के क्षेत्र में हिंदी का प्रभाव है। जिसके अंतर्गत वऱ्हाडी क्षेत्र में हिंदी का प्रभाव है। जिसके अंतर्गत वऱ्हाडी क्षेत्र भी आता है।

इसकी वजह से वऱ्हाडी बोली में हिंदी के शब्दों का आगमन हुआ है। वऱ्हाडी बोली हिंदी के आगत शब्दों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन करने के उपरांत भाषा के भिन्न-भिन्न स्तरों (ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य) पर निम्नलिखित बातें सामने आई हैं –

वऱ्हाडी बोली में आगत हिंदी शब्दों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन

1) ध्वनि स्तर –

ध्वनि-परिवर्तन का क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। यदि किसी भाषा की किसी विशिष्ट ध्वनि में किसी भाषा की किसी विशिष्ट ध्वनि में किसी उच्चार या पद के अंतर्गत परिवर्तन होता है तो यह परिवर्तन प्राय: उन सभी उच्चारों या पदों में पहुँचता है जिनमें वह विशिष्ट ध्वनि है। वऱ्हाडी बोली में हिंदी भाषा के आने से ध्वनि के आगमन, लोप, विकार, विपर्यय, समीकरण, विषमीकरण आदि अनेक रूपों में ध्वनि परिवर्तन दिखाई देता है। जैसे-

हिंदी भाषा		**वऱ्हाडी बोली**
1- जवाब	-	जाब
2- खिलाफ	-	खिलाप
3- हिफाजत	-	हजाफत
4- चुनरी	-	चुनडी
5- भीतर	-	भितर
6- नतीजा	-	नतीज्या
7- भूलने	-	भुलने

8- कुँवारा - कुवारा

विश्लेषण- ध्वनिस्तर पर वऱ्हाडी में आगत हिंदी शब्दों की वजह से कुछ स्वर, व्यंजन का लोप हुआ है। जैसे- हिंदी शब्द 'जवाब' का वऱ्हाडी बोली में जाब हो जाना इसमें 'व' व्यंजन का लोप हुआ है। **विकार** में खिलाफ का खिलाफ 'फ' का 'प' हो जाता है। **विपर्यय** की वजह से हिफाजत का हजाफत में 'फ' की जगह 'ज' और 'ज' की जगह 'फ' हो गया है। भीतर का भितर में 'ई' का 'इ' दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है। 'नतीजा' का **वऱ्हाडी बोली में** 'नतीज्या' हुआ है इसमें 'या' व्यंजन का आगम हुआ हैं। 'भूलने' का 'भुलने' में 'ऊ' का 'उ' हुआ है। कुँवारा का कुवारा में लोप हुआ है।

2) रूप स्तर–

वऱ्हाडी बोली में आगत हिंदी शब्दों में प्रत्यय के आधार पर परिवर्तन दिखाई देता है जो की निम्नलिखित हैं-

	हिंदी शब्द		**वऱ्हाडी बोली**
1-	खोलना	-	खोलने
2-	घुसन	-	घुसने
3-	वापस	-	वापिस
4-	दरवाजा	-	दरोजा

विश्लेषण –रूप स्तर पर वऱ्हाडी बोली में आगत हिंदी शब्दों का अध्ययन करते समय पर प्रत्यय में परिवर्तन जैसे खोलना का खोलने, घुसना का घुसने में 'आ' का 'ए' मध्य प्रत्यय में परिवर्तन में वापस का वापिस में 'अ' का 'इ' हो गया है। दरवाजा का दरोजा में 'वा' का लोप होकर 'ओ' प्रत्यय लगा है।

3) शब्द स्तर–

वऱ्हाडी बोली में हिंदी के हूबहू शब्द आए हैं। उसमें कोई परिवर्तन नहीं है। जो निम्नलिखित है।

	हिंदी शब्द	**वऱ्हाडी शब्द**	**मानक मराठी शब्द**
1-	अंजाम	अंजाम	परिणाम
2-	अंदेशा	अंदेशा	संशय
3-	अरमान	अरमान	इच्छा

विश्लेषण –वऱ्हाडी बोली में हिंदी के ज्यों के त्यों शब्द आए हैं। इन शब्दों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। लेकिन मराठी और वऱ्हाडी बोली पूर्ण रूप से अलग हैं।

4) वाक्य स्तर

1- सचिन किती **परेसान** हाय।(वऱ्हाडी बोली)

सचिन किती **हैरान** आहे। (मराठी भाषा)

सचिन कितना **परेशान** है। (हिंदी भाषा)

विश्लेषण –'सचिन कितना परेशान है'। इस हिंदी वाक्य का वऱ्हाडी बोली में 'सचिन किती परेसान हाय' में हिंदी शब्द परेशान का वऱ्हाडी बोली में 'परेसान' हो गया हैं। इसमें तालव्य ध्वनि 'श' का दंत्य 'स' हो गया है।

निष्कर्ष

भाषा स्थिर नहीं रहती है। उसमें सदा परिवर्तन होता है। विद्वानों का अनुमान है कि कोई भी प्रचलित भाषा एक हज़ार वर्ष से अधिक समय तक एक–सी नहीं रह सकती, जो मराठी भाषा आजकल बोली जा रही है। वह आदि में ठीक इसी रूप में नहीं बोली जाती थी। भविष्य में न ही इसका यह रूप होगा।

भाषा परिवर्तन इतना धीरे-धीरे होता है कि वह हमें मालूम नहीं होता। लेकिन अंत में परिवर्तनों के कारण नई-नई भाषाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। भाषा जब एक सीमित क्षेत्र से दूसरे सीमित क्षेत्र में प्रयुक्त होती है तब उसमें परिवर्तन दिखाई देता है। इस परिवर्तन से ही भाषा परिवर्तनशील होती है क्योंकि भाषा के परिवर्तन में ही उसका विकास है। वऱ्हाडी बोली महाराष्ट्र के प्रमुख बोलियों में से विदर्भ कि प्रमुख एक बोली है। जिसमें हिंदी शब्द दिखाई देते हैं। वऱ्हाडी बोली में मानक मराठी के शब्द कौन-से है और हिंदी शब्द कौन-से हैं यह समझ पाना मुश्किल है। वऱ्हाडी बोली में जो हिंदी शब्द वऱ्हाडी बोली में आए हैं वे कैसे आए हैं, इसका विश्लेषण इस शोध आलेख में ध्वनि, रूप शब्द तथा वाक्य स्तर पर दिखाया गया है।

संदर्भ सूची-

1) सोटे देविदास 'वैदर्भिय बोली कोश' सोटे साहित्य प्रकाशन, वर्धा (1974)

2) नाफड़े डॉ॰ शोभा 'वऱ्हाडी मराठी : उद्गम आणि विकास' स्वरूप प्रकाशन, औरंगाबाद (2007)

3) कुलकर्णी आरती 'भाषाविज्ञान : संकल्पना एवं स्वरूप' विजय प्रकाशन, नागपुर (2009)

4) गोरे डॉ॰ दादा 'आधुनिक भाषाविज्ञान आणि मराठी भाषा' कैलास पब्लिकेशन, औरंगाबाद (2005)

5) कुबरे डॉ॰ वसंत एवं कुलकर्णी डॉ सुलक्षणा, 'भाषाविज्ञान परिचय' फडके प्रकाशन कोल्हापुर, (2003)

6) वाटाणे डॉ॰ राजेंद्र ' वैदर्भीय काव्याधरा' विजय प्रकाशन नागपूर (2013)

7) वाघ विट्ठल 'काया मातीत मातीत' देशमुख प्रकाशक, पुणे (1994)

8) http://www.linindia.Net/Marathi/Marathi.html language information survey of india.centrealinstituate of indian language (CIIL) Mysour.

9) Varhadi dialect, form Wikipedia, the free encyclopedia.

हैमलेट के अनुवाद की समीक्षा

शावेज़ ख़ान

सारांश

इस आलेख में सारांश स्वरूप कुछ बातों का उल्लेख किया जा सकता है जैसे कि शेक्सपियर के मुख्य पात्र हैमलेट की दुविधामय स्थिति जो कि अंग्रेज़ी साहित्य में प्रसिद्ध है और जिसे वह To be or not to be" के रूप में ग्रहण करते हैं। यह पूरा आलेख भी हैमलेट की इसी स्थिति का वर्णन करते हुए इस नाटक में छिपे कुछ मूल तथ्यों पर प्रकाश डालने का प्रयास करता है, साथ ही इसके अनुवाद के समय अनुवादक द्वारा बरती गई सतर्कता की ओर भी संकेत करता है कि वह अपने कार्य में किस सीमा तक सफलता प्राप्त कर पाया है। इस आलेख में प्रतिशोध को लेकर हैमलेट की मानसिकता एवं नारी के प्रति उपजी उसकी घृणा को भी केंद्र में लेने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना

जी॰बी हैरिसन शेक्सपियर के संदर्भ में कहते हैं, "No household in the English-speaking world is properly furnished unless it contains copies of the ***Holy Bible and of The Works Of William Shakespeare.*** It is not always thought necessary that these books should be read in mature years, but they must be present as symbols of ***Religion and Culture***." इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शेक्सपियर का स्थान अंग्रेज़ी विश्व में किस रूप में ग्रहण किया जाता है। वहां उनकी कृतियों को वही आदर और सम्मान मिलता है जो कि पवित्र ग्रंथ बाइबल को दिया जाता है और एक घर तब तक सम्पूर्ण नहीं माना जाता जब तक उसमें पवित्र ग्रंथ बाइबल और शेक्सपियर की रचनाएँ उपस्थित न हों, भले ही इन कृतियों को पढ़ा न जाए किंतु यह 'धर्म और संस्कृति' के रूप में प्रत्येक घर में अवश्य होनी चाहिए, ऐसी श्रद्धा शेक्सपियर हेतु हमें पाश्चात्य समाज में देखने को मिलती है।

विश्व-साहित्य के अद्वितीय नाटककार शेक्सपियर का जन्म 26 अप्रैल, 1564 ई॰ में स्ट्रेटफोर्ड-आन-एवोन नामक स्थान में हुआ। इनके पिता का नाम 'जॉन शेक्सपियर' और माता का नाम 'मैरी शेक्सपियर' था। 1587 ई॰ में शेक्सपियर ने लंदन जाकर नाटक कंपनियों में काम करना शुरू किया जहां से उनकी कला धीरे-

धीरे समूचे विश्व में अपना वर्चस्व स्थापित कर गई। शेक्सपियर ने 1612 ई॰ में लिखना छोड़ दिया और 1616 ई॰ में उनका देहांत हो गया और विश्व-साहित्य का पर्याय हमेशा के लिए अलविदा कह गया।

शेक्सपियर ने लगभग-लगभग 36 नाटक लिखे और कुछ कविताएं भी लिखीं। उनके कुछ प्रसिद्ध नाटक हैं- जूलियस सीज़र, ओथेलो, मैकबेथ, हैमलेट, सम्राट लियर, रोमियो जूलियट(दु:खांत), मर्चेन्ट ऑफ वेनिस(वेनिस का सौदागर), ट्वेल्फ्थ नाइट(बारहवीं रात), मच अड़ो अबाउट नथिङ्ग(तिल का ताड़), दी टेम्पेस्ट(तूफ़ान)। इनकी सभी रचनाएँ सुप्रसिद्ध हैं जिनको किसी के परिचय की आवश्यकता नहीं है। शेक्सपियर के द्वारा लिखी गई सब त्रासदियाँ अपने आप में एक मील का पत्थर हैं और उनके समान इस क्षेत्र में फिर दुबारा कोई ख्याति प्राप्त ना कर सका। शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद भारतीय साहित्य में कई साहित्यकारों द्वारा किए गए हैं जिस में कुछ जो सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं वह वो अनुवाद हैं जो डॉ॰ हरिवंशराय बच्चन, डॉ॰ रांगेय राघव और डॉ॰ अमृत राय द्वारा किए गए।

इन तीनों के प्रयासों में सबसे सफल प्रयास यदि देखा जाए तो वह डॉ॰ रांगेय राघव जी का माना जाता है क्योंकि इनके द्वारा किए गए अनुवाद भाषा की सरलता को बनाए रखते हुए पाठक के मस्तिष्क में वही बिंब स्थापित करते हैं जो एक मूल रचना को पढ़ने के बाद पाठक अनुकलित करता है। जबकि बच्चन जी का अनुवाद काव्यात्मक होने के कारण बहुत से स्थानों पर कुछ कृत्रिम और कुछ भोंड़ा सा प्रतीत होता है। यद्यपि उनका काव्यात्मक प्रयास प्रथम प्रयास होने के कारण सराहनीय है। वहीं अमृत राय जी ने भी गद्यात्मक अनुवाद प्रस्तुत किए। परंतु उनकी भाषा में भी वह सहज प्रभाव लक्षित नहीं होता जो रांगेय राघव जी द्वारा अनूदित कृतियाँ सहज भाव से कर जाती हैं।

२०वीं शताब्दी के एक महत्वपूर्ण साहित्यकार डॉ॰ रांगेय राघव जी का जन्म उत्तर प्रदेश की प्रसिद्ध ताजनगरी 'आगरा' में १७ जनवरी १९२३ को हुआ। इनका पूरा नाम 'तिरुमल्ला नंबकम विराराघवन आचार्य' था। इन्होंने अपने ४० साल के छोटे से जीवन में १३ वर्ष की आयु से ही लिखना शुरू कर दिया था। ४० साल की आयु में ही कैंसर के कारण इनकी मृत्यु हो गई और एक बहुत बड़ा अनुवादक हमारे बीच न रहा। इनके द्वारा किए गए शेक्सपियर के अनुवाद हैं जूलियस सीज़र, ओथेलो, जैसा तुम चाहो (As you like it), तिल का ताड़ (Much Ado About Nothing), तूफ़ान (The Tempest), निष्फल प्रेम, परिवर्तन, बारहवीं रात (Twelfth Night), मैकबेथ, वेनिस का सौदागर (Merchant Of Venice), हैमलेट।

हैमलेट शेक्सपियर का एक अत्यंत दु:खांत नाटक है। यह नाटक उसके रचनाकाल के तीसरे युग की रचना है, जब उसने जूलियस सीज़र, ओथेलो, सम्राट लियर, मैकबेथ, एंटणी एंड क्लियोपैट्रा केरियोलैनेस, टाइमन ऑफ एथेंस नामक नाटक लिखे थे। ऐसा माना जाता है कि हैमलेट की कथा शेक्सपियर के हैमलेट से पूर्व ही लिखी जा चुकी थी। 'सैक्सोग्रैमैटिक्स' की 'हिस्टोरीय डैविका' में यह पेरिस में 1514 ई॰ में छपी थी। कुछ का मत यह भी है कि अंग्रेज़ी में ही हैमलेट नाटक एक पुराना नाटक था जो शेक्सपियर के हैमलेट से पहले खेला जाता था। कुछ विद्वानों का मत है कि शेक्सपियर ने वहाँ से ही अपने नाटक का कथ्य लिया था।

शेक्सपियर का हैमलेट प्रतिहिंसा का दु:खमय अंत नहीं, मानव-आत्मा का दु:खांत है, जिसमें मनुष्य के उदात्ततम गुण संसार की नीचता और कुटिलता से कुचले जाते हैं। मनुष्य जीवन के जो सार्वजनीन सत्य हैमलेट में प्रतिपादित हैं, वैसे अन्यत्र कम ही मिलते हैं। शेक्सपियर का कोई भी नाटक उसके पाठकों पर वह प्रभाव नहीं डाल सका जो प्रभाव हैमलेट ने डाला। इसका नाम 'विचारों की त्रासदी' रखा गया जो की इसके अनुसार बिलकुल ठीक बैठता है। हैमलेट एक ऐसी त्रासदी है जिसमें इसका मुख्य पात्र "हैमलेट निरंतर धोखे खाने के बाद अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। वह उस स्थिति में फंस जाता है जहां वह केवल अपने एक मित्र को छोड़कर किसी पर भी विश्वास नहीं कर सकता और जिन पर वह विश्वास करता है वह भी विश्वासघात कर बैठते हैं। इन सब घटनाओं के परिणामस्वरूप वह अपने आपको पागल दर्शाना आरंभ कर देता है ताकि वह सत्य को सामने ला सके। हैमलेट में बहुत से पात्र हैं जिनके नाम रांगेय राघव जी ने उनके मूल रूप में ही रखे हैं ताकि मौलिकता खंडित न हो और यह अनुवाद के नियमों के अनुसार ठीक भी है।

1. **क्लौडियस**

   डेनमार्क का सम्राट हैमलेट का चाचा और उसके पिता का खूनी (नाटक का मुख्य खलनायक)

2. **हैमलेट**

   स्वर्गीय सम्राट का पुत्र तथा क्लौडियस का भतीजा (नाटक का मुख्य पात्र)

3. **पोलोनियस**

   राजमहल का प्रधान करमचारी और क्लौडियस का चाटुकार ओफीलिया और लेआर्टस का पिता।

4. **लेआर्टस**

5. **होरेशिओ**

   हैमलेट का मित्र

6. **गरट्रयूड**

डेनमार्क की सम्राज्ञी और हमलेट की माँ

7. ओफीलिया

हैमलेट की प्रेमिका जिसे वह प्राप्त नहीं कर पाता

यह कुछ मुख्य पात्र हैं जिनके इर्द गिर्द पूरा कथानक कसा गया है।

हैमलेट की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह नाटक 'नाटक के भीतर एक नाटक' A play within a play है। हैमलेट जिसे सब पागल समझते हैं वस्तुतः वह केवल एक □ोंग करता हुआ पूरे नाटक में नज़र आता है जिसे सभी उसका पागलपन समझते हैं किंतु उसका अभिनय इतना वास्तविक होता है कि वह उसके उद्देश्य को पूरा कर ही देता है। हैमलेट जिसे बहुत से विद्वानों ने कायर, डरपोक, कमजोर व्यक्ति की उपाधी दी वह उतना ही चतुर और उद्देश्यलक्षित पुरुष था। कुछ विद्वानों ने हैमलेट के मानसिक-विश्लेषण पर काफी बल दिया जिसमें ***डॉ॰ एन्स्र्ट जोन्स*** जी का यह विचार था कि हैमलेट ने अपने प्रतिशोध को टाला क्यों? क्या वह सच में पागल था या सिर्फ पागल होने का □ोंग करता था। हैमलेट ने एक कलात्मक अभिनय की उपलब्धि को सम्पन्न किया या निष्पन्न किया। डॉ॰ जोन्स ने अपने यह विचार विभिन्न विद्वानों के मतों के विश्लेषण के पश्चात दुनिया के सामने रखे। ***'अलरिसी'*** ने सन १८३९ में यह विचार सामने रखा की हैमलेट मूल रूप से यह जानता ही नहीं था कि प्रतिशोध का नैतिक औचित्य है क्या। उसकी चरित्रगत प्रवृति और बहुत अधिक समर्पित धार्मिक और इसाईयत वाले सिद्धान्त उसको उसके पिता के प्रतिशोध लेने के बीच में बाधा बनकर खड़े थे। एक अन्य विद्वान ***'स्टॉल'*** के अनुसार उसका यह आचरण केवल उसके बौद्धिक होने से संबन्धित था और वह बहुत कटु यथार्थवादी था जो कि उसके पिता के प्रेत पर किसी हालत में विश्वास करने के लिए राज़ी नहीं था और उस प्रेत की संदिग्धता ही उसे प्रतिशोध को लेकर दुविधा में डाले थी। वह स्वयं को विश्वास नहीं दिला पा रहा था कि प्रेत पर विश्वास किया जाए या नहीं। क्या कारण है कि हैमलेट अकेले में किए गए आकाशभाष में अपनी विवशता तो दर्शाता है किंतु उसके दिमाग में क्या चल रहा है खुल के नहीं बताता। उसकी इस दुविधा के निष्कर्ष स्वरूप यही कहा जा सकता है कि हैमलेट के अंदर किसी प्रकार की घृणा थी अपने पिता के प्रतिशोध को लेकर जिसे वह स्वयं नहीं पहचान सकता था। हैमलेट के अंदर एक शिशु था जिसे समय की मार ने समय से पहले ही वयस्क बना दिया था और साथ ही उसके पिता को उससे छीन कर अनाथ भी। उसे जबरन चतुर बनना पड़ा किंतु वह यह ज़िम्मेदारी □ग से अपने कंधों पर ले ना पाया जिसके कारण वह भयभीत हो उठा। बहादुर वो होता है जिसने जीवन भर जीवन से संघर्ष किया होता है और वो संघर्ष जो दूसरों के साथ किया जाता है किंतु हैमलेट तो इस सब के लिए बना ही नहीं था और जिस घर में ही गला काटने

वाला साथ रहे वहाँ भय न होगा तो क्या होगा। यह भय एक समय के बाद उसकी कमजोरी बन गया जो कि एक ऐसी घृणा में परिवर्तित हो गई जिसे वह अंत तक स्वयं ही नहीं समझ सका।

हैमलेट जो की १७वीं शताब्दी(१६००-१६०२) के आरंभ में लिखा गया, शेक्सपियर का ऐसा नाटक है जिस पर बहुत से निर्वचनों ने भी जन्म लिया। यह नाटक निर्वचन की दृष्टि से एक ऐसा नाटक है जिस पर यदि चर्चा की जाए तो शायद ही उसका कोई अंत देखने को मिले। साथ ही साथ यह बहुत से रहस्यों को भी उद्घाटित करता है जो की नाटक के बीच ही देखने को मिलते हैं। यहाँ एक रहस्य को मूल नाटक और अनूदित कृति की पंक्तियों के द्वारा समझाने का प्रयास किया जा रहा है।

Act Five, Scene One

FIRST CLOWN: Give me leave; here lies the water; good: here stands the man; it is will he nill he, he goes; mark you that? but if the water come to him and drown him, he drowns not himself. Argal, he that is not guilty of his own death, shortens not his own life.

अनुवाद

पहला विदूषक : नहीं, पहले मेरी बात पूरी हो जाने दो साथी! देखो मानो यहाँ तो पानी है। बहुत अच्छा, और यहाँ आदमी खड़ा है, बहुत अच्छा। अब अगर आदमी पानी के पास जाए और अपने-आपको उसमें डुबो दे, तो इसका मतलब हुआ कि उसने यह काम अपनी इच्छा से किया है। समझे, इस बात को अपनी ध्यान में रखना, लेकिन अगर उसके जाने के बजाय पानी ही स्वयं उसके पास आ जाए और उसे डुबा दे, तो यह उसकी आत्महत्या नहीं होगी। इसका यह तात्पर्य हुआ कि अगर मनुष्य अपनी इच्छा से अपनी हत्या नहीं करता है तो उस पर यह दोष नहीं लगाया जा सकता कि उसने किसी तरह आत्महत्या की है। समझे?

इन पंक्तियों में हो रहे रहस्य के उदघाटन को साफ-साफ देखा जा सकता है यह संवाद उस समय का है जब पहला विदूषक दूसरे विदूषक को ओफीलिया की कब्र खोदते समय उसकी आत्महत्या के संदर्भ में समझा रहा था। उसके शब्द इस तथ्य को सोचने पर विवश कर देते हैं कि ओफीलिया की मृत्यु 'आत्महत्या थी या वह एक हत्या थी'। यदि इसे एक साज़िश कहा जाए तो यह षड्यंत्र किसने रचा था? केवल एक ही व्यक्ति था जिसे ओफीलिया की मृत्यु से कोई लाभ हो सकता था और वह था सम्राट। नाटक में जिस तत्व को दर्शाया नहीं गया वह यही था ओफीलिया की मृत्यु उसके भाई को और अधिक प्रतिशोध के लिए उक्साएगी और वह अपने पिता और अपनी बहन का बदला हैमलेट से लेकर ही रहेगा। यह षड्यंत्र केवल सम्राट का ही हो सकता है जिससे यह सिद्ध हो जाता है की ओफीलिया की मृत्यु आत्महत्या नहीं हत्या थी। दूसरी ओर इन पंक्तियों से

निर्वचन का भी बोध होता है क्योंकि ओफीलिया की मृत्यु समसामायिक स्तिथियों का ही परिणाम थी जो उसकी आत्महत्या को एक हत्या के रूप में परिवर्तित करती है।

हैमलेट शेक्सपियर की एक ऐसी रचना है जो पाठक एवं दर्शक दोनों को ही संसार की उन घिनौनी वास्तविकताओं से परिचित करती हैं जो ऊपर से तो नहीं दिखती हैं किंतु अंदर ही अंदर मनुष्य को खोखला करती चली जाती हैं। हैमलेट भी ऐसी ही स्थिति का शिकार हुआ एक पात्र है। शेक्सपियर की त्रासदियों का तोड़ तो नहीं है किंतु उनकी रचनाओं में एक बात जो बार-बार किसी न किसी रूप में उभर कर सामने आती है वह है उनकी स्त्री के विरुद्ध लक्षित होने वाली विचार धारा। उनके द्वारा लिखे गए हर नाटक में कहीं न कहीं स्त्री ही मुख्य पात्र के सर्वनाश का कारण बनती है जैसे 'ओथेलो के सर्वनाश का कारण डेसडिमोना', 'मैकबेथ की मृत्यु का कारण लेडी मैकबेथ', 'हैमलेट के सर्वनाश का कारण गरट्रयूड उसकी माँ और उसकी प्रेमिका' आदि। उनकी स्त्री को लेकर इस विचारधारा पर पहले भी कई चर्चाएँ हो चुकी हैं किंतु इसके पीछे लिप्त विचारधारा को कोई समझ न पाया है। हैमलेट में भी उनके द्वारा एक पंक्ति इस संदर्भ में मिलती है-

"Frailty, thy name is women"(Act one, Scene two)। अर्थात 'Frailty' शब्द के कई पर्याय हैं, जैसे- दोष, निर्बलता, अस्थिरता, भंगुरता आदि। किंतु यहाँ इस शब्द को अस्थिरता के रूप में ग्रहण किया गया है क्योंकि हैमलेट की माँ उसके पिता की मृत्यु के पश्चात तुरंत ही उसके चाचा के साथ दूसरा विवाह कर लेती है जिससे हैमलेट को बहुत बड़ा धक्का लगता है कहीं न कहीं इस शब्द को निर्बलता के रूप में भी रखा गया है यदि उसकी माँ की दृष्टि से सोचा जाए तो।

निष्कर्ष

अंत में निष्कर्ष स्वरूप हम यह ही कह सकते हैं कि शेक्सपियर की एक-एक कृति अपने भीतर ना जाने क्या-क्या छिपाए हुए है और उनकी भाषा भी अत्यधिक कठिन है एक हिंदी भाषा भाषी के लिए किंतु रांगेय राघव जी द्वारा किया गया हैमलेट का अनुवाद कुछ अपवादों को छोड़कर अनुवाद की कसौटी पर खरा उतरता है यह सरल है, सुग्राह्य है, मूल रचना के बहुत अधिक समीप है, इसमें स्वतंत्रता भी अधिक नहीं ली गई है, भावानुवाद पर विशेष बल दिया गया है, शब्दों के सटीक समतुल्य चुने गए हैं, मूल रचनाकर की कृति को मौलिक सी गति प्रदान की गई है और यह अनूदित कृति पाठक पर मूल कृति की भांति समान प्रभाव डालती नज़र आती है। राघव जी इस प्रकार के नाटकों का अनुवाद केवल एक से दो दिन में कर दिया करते थे वह कौशल यहाँ नज़र भी आता है किंतु क्योंकि जल्दी का काम शैतान का काम होता है तो कुछ त्रुटियाँ भी कहीं

कहीं दिखाई देती हैं किंतु इतने अच्छे अनुवाद में उन्हें नज़रअंदाज़ किया जा सकता है। इस नाटक के अनुवाद के माध्यम से इसे अब हिंदी में भी खेला जा सकता है और यह रंगमंचीयता की दृष्टि से भी रचना के साथ पूरा न्याय करता है क्योंकि इसे बड़ी सरलता से रंगमंच पर खेला जा सकता है। यह एक काव्यात्मक कृति का गद्यात्मक अनुवाद होते हुए भी अपनी संप्रेषणीयता कहीं नहीं खोता और यह एक उत्तम गद्यानुवाद का सर्वोच्च उदाहरण है। आज जिस प्रकार अनुवाद का विस्तार हो रहा है उस प्रकार इस विषय को लेकर लोग जागरूक नहीं हैं किंतु यदि डॉ॰ रांगेय राघव जी जैसी दृष्टि रखकर अनुवाद के विद्यार्थी अनुवाद करने का प्रयास करें तो साहित्यिक अनुवाद के क्षेत्र में भी परचम लहराया जा सकता है। हैमलेट का अनुवाद एक सफल अनुवाद है और यह साधारण पाठक तक शेक्सपियर को मूल नाटक के रूप में ही पहुंचता है। यह तथ्य यह अनुवाद स्वयं ही सिद्ध कर चुका है और इसे किसी प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

संदर्भ सूची

1. शेक्सपियर, विलियम, हैमलेट, २०१०, पीकौक पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. राघव, डॉ॰ रांगेय, हैमलेट का हिंदी रूपांतर, २०११, राजपाल एंड संज़, दिल्ली।
3. Bloom, Harold, William Shakespeare's Hamlet- Bloom's Reviews, 1999, Chelsea Press.
4. Bloom, Harold, Interpretation- Hamlet, 2008, VIVA Books Publication.
5. George Henry, Miles, A Review Of Hamlet, 2013, Hardpress Publishers.
6. Golding, William, William Shakespeare's Hamlet(modern critical interpretation), 1987, Chelsea House Publications.
7. Marks, Roberts, Hamlet- Another Interpretation, 1980, Raven Publications.
8. Kinney.F, Arthur, Hamlet- Critical Essays(Shakespeare's criticism), 2001, Routeledge Publishers.
9. Ridley, Dr. Diana, The Literature Review(1ST Edition), 2008, sage publications ltd.
10. Interpretation of famous quotes of Hamlet, Wikipedia, google.com.

<u>पत्र-पत्रिकाएँ</u>

1. अनुवाद ,संपादक : डॉ. गार्गी गुप्त, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली
2. अनुवाद भारती, संपादक : डॉ. रामगोपाल सिंह, अखिल भारतीय अनुवाद परिषद,
3. बहुवचन, संपादक : अशोक मिश्र, म.ग.अं.हिंदी.विवि.वर्धा,442001
4. पुस्तक-वार्ता, संपादक : भारत भारद्वाज, म.ग.अं.हिंदी.विवि.वर्धा,442001

बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का रचना-कर्म

अमरेन्द्र त्रिपाठी

साहित्यकार, पत्रकार और सामाजिक चिंतक बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य असमिया जातीय चेतना के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। भक्तिकालीन कवि शंकरदेव की तरह ही इन्होंने भी अपनी लेखनी के माध्यम से असमिया जीवन, असमिया संस्कृति और असमिया भावबोध को राष्ट्रीय पहचान प्रदान की है। समाजवादी विचारधारा से प्रभावित बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य अपने समय और समाज के प्रति बेहद जागरूक और सचेत रचनाकार हैं। असहयोग आंदोलन से लेकर आपातकाल तक के दौरान पूर्वोत्तर भारत को प्रभावित करने वाली हर महत्वपूर्ण घटना के उपर इन्होंने अपनी लेखनी चलायी है। सन १९३० के 'असहयोग आन्दोलन' की पृष्ठभूमि पर जहां उन्होंने 'कालर हुमूनिया' नामक उपन्यास लिखा, वहीं सन १९४२ के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की पृष्ठभूमि पर 'मृत्युंजय'। सन १९४७ के प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन के एक दिन की घटना को केन्द्र में रखकर उन्होंने अपने पहले उपन्यास 'राजपथे रिङियाय' की रचना की, तो सन १९६० में असम में हुए भाषा आन्दोलन के विषय में अपने विचारों को 'भारती' में व्यक्त किया। सन १९६२ के चीनी आक्रमण की सबसे तीव्र साहित्यिक प्रतिक्रिया संभवतः बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने ही दी। इस घटना को केंद्र में रखकर सन १९६५ में ही उन्होंने 'शतघनी' नामक उपन्यास लिख दिया। सन १९७० के आसपास बांगलादेश में चले मुक्तिसंघर्ष का प्रत्यक्ष अनुभव बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य को नहीं था लेकिन उस घटना से उद्वेलित होकर उन्होंने 'कब्र आरु फ़ूल' नामक उपन्यास लिखा। जयप्रकाश नारायण की विचारधारा से गम्भीर रुप से प्रभावित बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने आपातकाल की पृष्ठभूमि पर 'मूनिचूनिर पोहार' नामक उपन्यास लिखा। इस परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाए तो इनके जैसी राजनैतिक जागरुकता भारतीय साहित्य के किसी भी रचनाकार में दुर्लभ है। हिंदी में यदि इनकी किसी के साथ तुलना हो सकती है तो वे हैं बाबा नागार्जुन। बेहद सहज-सरल जीवन जीने वाले बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का समस्त जीवन और लेखन मनुष्य मात्र के पक्ष में किया जाने वाला एक साहसिक संघर्ष है।

बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का जन्म १४ अक्टूबर,१९२४ को असम के शिवसागर जिले में स्थित साफ़ाई चाय बगान में नौकरी करने वाले शशिधर भट्टाचार्य एवं आइदेव भट्टाचार्य के घर हुआ था।सात भाई-बहनों में बीरेन्द्र दूसरे नंबर पर थे। इनके पिता रोजी-रोटी के लिए साफ़ाई चाय बगान में नौकरी करते थे, लेकिन उनका परिवार जोरहाट जिले के साउघाट मौजा में दिहा नदी के किनारे स्थित □कियाखुवा गांव का रहने वाला था। बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का बचपन साफ़ाई चाय बगान में ही बीता। असम के चाय बगान जातिगत समरसता

के केंद्र रहे हैं। भारत के गांवों में विद्यमान जातिगत भेदभाव से ये चाय बगान मुक्त रहे हैं। असमिया समाज में जातिगत कट्टरता के अभाव में इन बगानों की कोई-न-कोई भूमिका अवश्य रही है। इसका प्रभाव बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य की सोच और समझ पर भी पड़ा। कट्टर ब्राह्मण परिवार में पैदा होने के बावजूद बचपन से ही उनके भीतर जातिभेद के प्रति एक खास किस्म की चिढ़ थी। वैसे चाय बगानों में श्रेणी भेद बड़े पैमाने पर विद्यमान था। बचपन में ही मिले असमानता के इस अहसास ने बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य को मार्क्सवादी विचारधारा और राम मनोहर लोहिया एवं जय प्रकाश नारायण की समाजवादी विचारधारा के साथ आजीवन जोड़े रखने में बड़ी भूमिका निभायी।

बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य छात्र जीवन में बेहद प्रतिभाशाली छात्र थे। ये विज्ञान के छात्र थे। सन १९४१ में जोरहाट विद्यालय से चार विषयों में अस्सी प्रतिशत से अधिक अंकों और कुल मिलाकर पचहत्तर प्रतिशत अंकों के साथ इन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। राज्य में इनका स्थान प्रथम था। गुवाहाटी के प्रसिद्ध कॉटन कॉलेज से सन १९४३ में आइ.एससी. और सन १९४५ में बी.एससी की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य पत्रकारिता की पढ़ाई करने कोलकाता चले गये, परंतु दुर्भाग्यवश उस वर्ष से कोलकाता विश्वविद्यालय में पत्रकारिता की पढ़ाई प्रारम्भ नही हुई। मजबूर होकर भट्टाचार्यजी ने लॉ में प्रवेश ले लिया, लेकिन उनका मुख्य कार्य पत्रकारिता ही था। वे कोलकाता से निकलने वाली पत्रिका 'बाही' के उप-सम्पादक बने। 'बाही' से ही उनके सम्पादकीय जीवन की शुरुआत हुई जिस क्रम में आगे चलकर उन्होंने 'रामधेनु' का सम्पादन किया, जिसने आधुनिक असमिया साहित्य में 'रामधेनु युग' नामक एक नए युग का सूत्रपात किया। कोलकाता में उन्होंने हेमेन्द्र प्रसाद घोष के सम्पादन में निकलने वाली पत्रिका 'दैनिक एडवांस' में भी काम किया। इस दौरान बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य पत्रकारिता के साथ-साथ साहित्य लेखन में भी सक्रिय रहे। कोलकाता में ही उन्होंने अपना पहला उपन्यास लिखा और उसकी पांडुलिपि अपने प्रिय मित्र अमूल्य बरुआ को पढ़ने के लिए दी। सन १९४६ में कोलकाता में हुए भयानक सांप्रदायिक दंगे ने उनके प्रिय मित्र और उनके पहले उपन्यास दोनों की बलि ले ली।

बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का पहला प्रकाशित उपन्यास है- 'राजपथेर रिंगियाय'। यह सन १९५५ में प्रकाशित हुआ।सन १९४७ में मिली भारत की आजादी और आम जनता की उस पर प्रतिक्रिया को केंद्र में रखकर इस उपन्यास की रचना हुई है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा १५ अगस्त १९४७ के सुबह पांच बजे से शाम के पांच बजे की घटनाओं के आसपास घूमती रहती है। उपन्यास का नायक मोहन समाजवादी आदर्शों पर आजाद भारत के निर्माण का सपना पाले हुए है, लेकिन जब वह आजाद भारत के हालातों में किसी प्रकार का बदलाव नही पाता तो वह भारतीय समाज-व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन के उद्देश्य से मजदूरों को एकत्रित

करता है। मजदूर हिंदी में नारे लगाते हैं- 'ये आजादी झूठी है,देश की जनता भूखी है'। महज बीस वर्ष की उम्र में लिखे अपने पहले ही उपन्यास से बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने अपनी लाइन साफ़ कर दी- उनकी रचनाओं का उद्देश्य सामाजिक बदलाव है, महज मनोरंजन या व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं। मोहन की क्रांतिकारिता और ओजस्वी वाणी में बहुत आसानी से हम बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का अक्स देख सकते हैं। उस वक्त उन पर जयप्रकाश नारायण के विचारों का जोरदार प्रभाव था जो उनके राजनीतिक गुरु भी थे।उपन्यास में जयप्रकाशजी के विचारों की स्पष्ट प्रतिध्वनि मौजूद है।

सन १९६० में बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य के दो उपन्यास प्रकाशित हुए-'आई' और 'इयारुइंगम'।'इयारुइंगम' पर ही उन्हें वर्ष १९६१ का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला, तब उनकी उम्र थी महज ३७ वर्ष।

सन १९४६ में कलकत्ता से वापस लौटने के बाद भट्टाचार्यजी कुछ वर्षों तक गुवाहाटी में रहे।इस दौरान उन्होंने असमिया के महत्वपूर्ण समाचार-पत्र 'दैनिक असमिया' में बतौर सह-संपादक और समाजवादी पार्टी के मुख-पत्र 'जनता' में बतौर संपादक काम किया। १९ सितम्बर, १९४९ को मणिपुर के 'उखरुल' नामक जगह पर उनके एक अभिन्न मित्र रिसाङ केइसिङ ने एक विद्यालय की स्थापना की। रिसाङ समाजवादी विचारों से प्रभावित युवा थे और आजादी के पहले समाजवादी पार्टी में भट्टाचार्यजी के साथ काम कर चुके थे। उस समय उन्होंने भट्टाचार्यजी के आदर्शवादी विचारों,सहज-सरल जीवन और समर्पित व्यक्तित्व को बेहद करीब से देखा था। 'उखरुल' में स्कूल की स्थापना के बाद रिसाङजी को गणित और विज्ञान के एक अध्यापक की आवश्यकता पड़ी। उस वक्त उस इलाके में इस विषय का कोई अध्यापक नहीं था और बाहर से कोई व्यक्ति वहां जाना नहीं चाहता था। तब रिसाङजी को भट्टाचार्यजी की याद आई और उन्होंने उन्हें बतौर शिक्षक अपने यहां आमंत्रित किया। मित्रों और परिवार वालों के काफ़ी मना करने के बावजूद सन १९५० के आरंभ में भट्टाचार्यजी 'उखरुल' चले गए। 'उखरुल' में वे लगभग दो साल तक रहे और वहां से प्राप्त अनुभवों के आधार पर 'इयारुइंगम' नामक उपन्यास,'उखरुल चिट्ठी' नामक आलेख और 'आजिर बियाह पोरोहिलोय गांव पंचायत' नामक गल्प लिखा।

'इयारुइंगम' शब्द 'इयारु' और 'इंगम' नामक दो शब्दों के मेल से बना है जिसका मणिपुरी भाषा में मतलब होता है 'जनता का शासन'। अपने इस उपन्यास का नाम उन्होंने रिसाङ केइसिङ,जो बाद में मणिपुर के मुख्यमंत्री बने, के पहले पुत्र के नाम पर रखा था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान मणिपुर पर हुए जापानी आक्रमण और उस क्रम में दो साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच पिस चुकी तांखुल जनजाति का जीवन और उनका संघर्ष इस उपन्यास की विषयवस्तु है। उपन्यास की शुरुआत द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत से होती है। उपन्यास का नायक रिसाङ ईसा मसीह और गांधीजी के अहिंसावादी रास्ते पर चलकर नागा लोगों को एक नवीन जीवन देना चाहता

है। उसके भीतर समग्र भारत की एकता की कल्पना और कामना है। इसके विपरीत भीडे शीले नामक युवा सशस्त्र संघर्ष के द्वारा अपने देश को आजाद कराना चाहता है। उसके लिए देश का मतलब उसकी अपनी जनजाति है। इन दो चरित्रों के बीच का वैचारिक संघर्ष पूर्वोत्तर भारत में आजादी के पहले से चली आ रही दो विचारधाराओं और भावधाराओं के संधर्ष को भी प्रतिध्वनित करता है। उपन्यास में जीवन मास्टर नामक चरित्र भी है जो अपने कर्म और विचारों के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद की विचारधारा को नागा समाज में पिरो रहा है।

'इयारुइंगम' में साम्राज्यवादी शोषण और उसके क्रूर चरित्र का बेहद सूक्ष्म चित्रण है।द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 'उखरुल' का समाज दो भागों में विभक्त हो गया। सुभाषचन्द्र बोस के आह्वान पर समाज का एक बड़ा वर्ग जापानियों का स्वागत करने के लिए तैयार था तो दूसरी ओर गांधीजी के नेतृत्व में दूसरा वर्ग इस उम्मीद में अंग्रेजों के साथ था कि वे इस जंग में जीत के बाद उन्हें आजाद कर देंगे। अंग्रेजों ने नागा लोगों को जापानियों के खिलाफ़ जंग के लिए प्रोत्साहित किया ताकि वे अपनी जन्मभूमि को विदेशी आक्रांताओं से मुक्त रखें, लेकिन जब युद्ध खत्म हो गया तो उनसे शांति की अपील करने लगे। द्वितीय विश्वयुध्द के दौरान भयानक जापानी उत्पीड़न का शिकार रहा नागा समाज बाद में अग्रेंजों के शोषण की यातना भोगने के लिए अभिशप्त था। इस हालत पर उपन्यासकार एक जगह इन शब्दों में टिप्पणी करता है- "जिस उत्साह से वे मित्रशक्ति के साथ मिलकर संघर्ष किया था वह उत्साह अब नहीं रहा..। उन लोगों(अंग्रेजों) के अत्याचार से सारा गांव विवश हो गया है।..इस अत्याचार का कोई प्रतिकार नहीं है। किसी दिन गांव में अस्पताल होगा, स्कूल बनेंगे, सड़कें होंगी..इन सब वादों से अब वो मुकर गए हैं।..अब उनकों युद्ध नहीं शांति चाहिए।"('इयारुइंगम',द्वितीय संस्करण-१९६२,पृ.सं-४०,प्रकाशक-विचित्र नारायण बरुआ)

यह उपन्यास कई मामलों में बेहद महत्त्वपूर्ण है। पूर्वोत्तर भारत की जनजातियों के विषय में प्रचलित मिथों का विरोध करने का यह पहला प्रमुख साहित्यिक प्रयास था। इसमें उपन्यासकार ने बेहद बारीकी से यह दिखाने का प्रयास किया है कि पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय इलाकों में भारतीय राष्ट्र के निर्माण की प्रकिया शेष भारत से अलग है, जिस अंतर को न समझ पाने के कारण ही इन इलाकों में तमाम किस्म की समस्याओं का जन्म हुआ। इन इलाकों में जन्मे अलगाववादी आन्दोलनों का स्वरुप बहुत हद तक राजनैतिक है, जिसकी जड़ें यहां के इतिहास में विद्यमान हैं।यह समाज प्राचीन काल से ही स्वतंत्र रहा है। आजादी की इनकी मांग इनकी जीवन-पद्धति की स्वाभाविक आकांक्षा है, कोई साम्राज्यवादी चाल नहीं। बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य इस समस्या का समाधान गांधीजी के अहिंसा के मार्ग के भीतर देखते हैं।

सन 1962 के चीनी आक्रमण की सर्वाधिक तीव्र साहित्यिक प्रतिक्रिया बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने सन 1965 में प्रकाशित अपने उपन्यास 'शतघनी' के माध्यम से दी। यह उनकी राजनैतिक संचेतना का सशक्त प्रमाण है। 'शतघनी' की कहानी असम के मारघेटा अंचल पर केंद्रित है। इसके मुख्य पात्र बंधुराम मजुमदार, उनकी पत्नी प्रमिला और उनकी बेटी बिमला है। उपन्यास में चीनी आक्रमण का नहीं, बल्कि उसकी आशंका के कारण इस अंचल में हो रही हलचलों का चित्रण है। चीनियों के आक्रमण की आशंका को ध्यान में रखकर बंधुराम मजुमदार और उनका पूरा परिवार आमजन को सचेत और संघर्ष के लिए तैयार कर रहा है।चीनियों से गुरिल्ला संघर्ष के लिए बंधुराम एक युवकवाहिनी बनाते हैं। उनकी पत्नी भारतीय सैनिकों के लिए स्वेटर बुनती है और महिलाओं को नर्सिंग का प्रशिक्षण देती है। उनकी बेटी अपने चीनी पति आथेयी को महज इसलिए छोड़ देती है, क्योंकि वह चीनी जासूस है। कुल मिलाकर यह उपन्यास भारतीय स्वाधीनता पर आए एक भयानक संकट की पृष्ठभूमि में भारतीय जनता की एकजुटता, राष्ट्रभक्ति और उस सृजनात्मक इच्छाशक्ति का प्रकटीकरण करता है जिसके दम पर हमने आजादी पायी और आज तक अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखा है। चीनी आक्रमण को महज एक ऐतिहासिक घटना के रुप में देखने-सुनने और समझने वाले शेष भारत को यह रचना विशेष दृष्टि से संपन्न करती है।यह हमें इस बात पर भी सोचने को विवश करती है कि आखिर सन 62 तक भारतीय राष्ट्र से अपने आप को 'आइडेंटिफ़ाई' करने वाला पूर्वोत्तर भारत अचानक अपनी आजादी के लिए क्यों मरने-मिटने पर उतारु हो गया।

सन 1968 में बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'नष्टचन्द्र' प्रकाशित हुआ जो मूलतः भारतीय समाज में विद्यमान बेमेल विवाह की कुरीति पर केंद्रित था। सोलह साल की शुवनीकण की शादी विपुलदास नामक एक वृद्ध व्यक्ति से हो जाती है जिसका दोनों के दिलो-दिमाग पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। एक ओर जहाँ शुवनीकण अपनी अतृप्त शारीरिक चाहतों के कारण संतप्त है, वहीं विपुलदास एक बालिका के सपनों और कामनाओं को कुचल डालने के अपराध-बोध से पीड़ित है। आगे चलकर शुवनीकण के जीवन में दुर्लभ नामक एक युवक का आगमन होता है जो उसे पत्नी-धर्म और ह्रदयगत प्रेम के बीच चलने वाले भयानक अंतर्द्वंद्वों के भीतर धकेल देता है। भारतीय आदर्शों का अनुसरण करते हुए अंततः शुवनीकण अपने मनोगत विचलनों, यदि हम उसे विचलन मानें तो, पर विजय पाती है और अपनी मानसिक अशांति का समाधान समाज-सेवा के भीतर तलाशती है। गाँधीवादी भट्टाचार्यजी बेमेल विवाह की त्रासदी को तो इस रचना में उकेर पाने में सफ़ल हुए हैं, लेकिन उसका कोई संतोषजनक समाधान नहीं दे पाते।

सन 1970 में बीरेन्द्र कुमार भाट्टाचार्य के दो प्रमुख उपन्यास प्रकाशित हुए- 'प्रतिपद' और 'मृत्युंजय'। 'प्रतिपद' सन 1939 में असम के एक शहर डिगबोई, जहाँ तेल का कारखाना है, में हुए श्रमिक आंदोलन की

पृष्ठभूमि पर लिखा गया है; जबकि 'मृत्युंजय' की पृष्ठभूमि है सन 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान असम के एक गाँव महङ में क्रांतिकारियों द्वारा रेल पलटने की घटना। दोनों की कालावधि लगभग एक है लेकिन दोनों के सवाल और समस्यायें अलग-अलग हैं।

'प्रतिपद' के केन्द्र में श्रमिक आन्दोलन और श्रमिकों की राजनैतिक जागरुकता है। इसमें अपने हक के लिए श्रमिकों द्वारा किये जाने वाले संघर्ष के साथ-साथ उनके भीतर विद्यमान जाति-भेद, श्रेणी-भेद, भाषा-भेद, धार्मिक-भेदभाव, आपसी ईर्ष्या आदि समस्याओं और भावनाओं को भी प्रदर्शित किया गया है। डिगबोई के तेल कारखाने में काम करने वाले साहबों के वैभव और चारित्रिक पतन के साथ-साथ वहाँ के श्रमिक वर्ग में वैसा ही बनने की होड़ के चित्रण के द्वारा भट्टाचार्यजी पूँजीवादी मानसिकता के वैश्विक प्रसार की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। उपन्यास का नायक एक पढ़ा-लिखा और नास्तिक युवक डिम्बेश्वर है जो अपनी मुस्लिम प्रेमिका जहाँआरा को पाने के लिए मुसलमान हो जाता है, और अपना नाम बदलकर गयासुद्दीन रख लेता है। वह कठोर परिश्रम के द्वारा श्रमिकों के एक संगठन का निर्माण करता है और शोषण के खिलाफ़ संघर्ष करता है। उसके भीतर देशभक्ति की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। तेल कारखाने के भीतर चलनेवाला संघर्ष अंततः स्वाधीनता संग्राम के साथ मिल जाता है।

सन 1979 के भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित 'मृत्युंजय' बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है। इसके भीतर उनकी वैचारिकता, आदर्श, जीवन-दृष्टि और सपने केन्द्रीकृत रुप में उपस्थित हैं। कथा की बारीक बुनावट और प्रस्तुति के कारण यह रचना भारतीय उपन्यास जगत में स्वाधीनता आन्दोलन का सर्वाधिक प्रमाणिक दस्तावेज है।

सन 1942 भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का सर्वाधिक जटिल समय था। काफ़ी लम्बे समय से चली आ रही भारत की आजादी की लड़ाई तब तमाम भ्रमों और भ्रांतियों का शिकार हो चुकी थी। भारतीय जनता की आस्था और सहनशक्ति दोनों में हलचल पैदा होने लगी थी। क्रांतिकारी शक्तियों के उद्भव ने अहिंसावादी विचारों को हाशिए की ओर धकेलना शुरु कर दिया था। आजादी के सपने आँखों में तैरने लगे थे तो साथ ही दमन का चक्र और अधिक क्रूर हो गया था। गाँधीजी के नेतृत्व में बेहद अनुशासित भारतीय जनता अब गाँधीजी के ऊपर हावी होने लगी थी। वह तत्काल भारत से अंग्रेजों की विदाई चाहती थी। इस क्रम में उन्होंने रेल पलटने, टेलीग्राफ़ के तारों को काटने, पुलों को उड़ा देने जैसी हिंसक वारदातों को अंजाम दिया। हालातों को भाँपते हुए गाँधीजी ने 42 की हिंसा की निंदा करने से इंकार कर दिया। विपनचन्द्र ने लिखा है- "गाँधीजी ने खुद 1942 में हिंसा की निंदा करने से इंकार कर दिया था। उनका कहना था कि यह सत्ता की बड़ी हिंसा का

जवाब था। फ़्रांसिस हचिंस का मानना है कि हिंसा पर गाँधीजी की ज्यादा आपत्ति इसलिए थी कि इससे जनभागीदारी घटती थी, लेकिन 1942 में गाँधीजी ने पाया कि इस बार स्थिति ऎसी नहीं है।"('भारत का स्वतंत्रता संघर्ष',हि.मा.का.निदेशालय,दिल्ली,1990,पृ.सं.-375)

'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान अधिकांश भारतीय राजनेता जेलों में थे। ऎसे में आन्दोलन का नेतृत्व भारतीय जनता ने अपने हाथों में ले लिया। हर आदमी खुद को आजादी की लड़ाई के एक सिपाही से आगे बढ़कर एक नेतृत्वकर्त्ता के रुप में देखने लगा। वह आजादी के संघर्ष से लेकर उसके स्वरुप पर भी विचार करने लगा। समय जटिल था इसलिए उनकी सोच के भीतर भी एक जटिलता पैदा हो गयी थी। 'मृत्युंजय' उस जटिल समय की बेहद जीवंत प्रस्तुति है। इसमें तत्कालीन राजनैतिक एवं समाजिक समस्याओं को लेकर उस समय के लोगों के भीतर विद्यमान द्वन्द्व, दुविधा और उहापोह का बेहद सूक्ष्म चित्रण है। पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, हिंसा-अहिंसा, छूत-अछूत, स्त्री-पुरुष आदि तमाम प्रश्नों पर उपन्यास का हर चरित्र अपनी बुद्धि और योग्यता के अनुकूल सोचता-विचारता है। सबके जीवन के अपने दुख हैं और सबके पास आजादी के अपने-अपने सपने हैं। सभी आजाद भारत को मानवतावादी विचारों के आधार पर निर्मित करना चाहते हैं। लेकिन सबके भीतर एक ही सवाल है- क्या हम आजाद हो पाएंगे? आजादी के बाद क्या हम इस शोषण से मुक्त हो जाएंगे? उपन्यास की भूमिका में भट्टाचार्यजी ने स्वयं लिखा है- "उपन्यास में विद्रोहसिक्त जनता के मानस का, उसकी विभिन्न ऊहापोहों का चित्रण किया गया है। सबसे बड़ी समस्या उस भोले जनसमाज के आगे यह थी कि गाँधीजी के अहिंसावादी मार्ग से हटकर हिंसा की नीति को कैसे अपनाएँ; और सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि इतनी-इतनी हिंसा और रक्तपात के बाद का मानव क्या यथार्थ मानव होगा? वह प्रश्न शायद आज भी ज्यों-का-त्यों जहाँ-का-तहाँ खड़ा है।"('मृत्युंजय',ज्ञानपीठ प्रकाशन,दिल्ली,1980,पृ.सं.-07)

'मृत्युंजय' का कथानक बहुत छोटा है। इसकी कथा बस इतनी है कि गोसाईंजी और कली दीदी के नेतृत्व में असमिया लोगों का एक दल द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेज सैनिकों को वर्मा सीमा पर ले जा रही एक रेलगाड़ी को पलट देता है। कथा के आरंभ का अधिकांश हिस्सा रेल पलटने की योजना के क्रम में बुना गया है जबकि अंतिम हिस्सा उसके बाद के हालातों पर केंद्रित है। धनपुर लस्कर और रुपनारायण को छोड़कर उपन्यास के अधिकांश चरित्र अधेड़ उम्र के सहज, सरल और पारिवारिक मनुष्य हैं। गांधीजी के नेतृत्व में चल रहे स्वाधीनता आंदोलन के दौरान जुलूसों या सभाओं में वे भाग ले चुके हैं, लेकिन क्रांतिकारी संघर्षों का उनका कोई सीधा अनुभव नहीं है।हिंसा-अहिंसा और पाप-पुण्य को लेकर इनके भीतर भयानक अंतर्द्वन्द्व हैं। इंसानों की हत्या को ये भयानक पाप समझते हैं, लेकिन अंग्रेजी सरकार द्वारा किए जा रहे भयानक अत्याचारों और स्वाधीन राष्ट्र के सुखमय जीवन की कल्पना ने इन्हें क्रांतिकारी गतिविधियों की ओर उन्मुख कर दिया है।

रेल पलटने की घटना की केंद्रिकता और उसको अंजाम देने की पूरी योजना का विस्तृत और बारीक वर्णन इस घटना को प्रतीकात्मकता के स्तर तक ले जाता है। कई बार ऐसा लगता है कि 'मृत्युंजय' केवल अंग्रेजों के शोषण के मूर्त रुप रेल को पलटने की ही कहानी नहीं है, बल्कि भारतीय समाज में सदियों से विद्यमान कुरीतियों और असमानताओं की चली आ रही रेल को भी पलटने के संघर्ष की कहानी है। या कहें तो मुख्य रुप से उसी की कहानी है। भारतीय समाज जितने आधारों पर विभक्त है उतना शायद ही दुनिया का कोई समाज विभक्त होगा, फ़िर भी भारत यदि एक है तो यह चमत्कार ही है। यह उपन्यास उस रहस्यमय भारत की कहानी है जो तमाम भिन्नताओं के बावजूद एक है। इसमें अलगाव के कारणों के साथ-साथ एकता के उन आधारों की भी खोज है जिसके कारण दुनिया का यह सबसे प्राचीन मुल्क आज भी एक है। स्वाधीनता संघर्ष भारतीयता की ठोस पहचान और उसके पुनर्सृजित होने का भी वक्त था। यह उपन्यास उस भारतीयता के सृजन की भी कहानी कहता है।

'भारत छोड़ो आन्दोलन' के घटित होने के छब्बीस वर्षों के बाद लिखे गए इस उपन्यास का अंत गोसाइन जी के इस वाक्य से होता है- 'स्वाधीनता पा लेने के बाद लोग अच्छे बनेंगे या नहीं?' गोसाइनजी की यह चिंता, प्रश्न या कहें आशंका 'मृत्युंजय' उपन्यास की मूलभूत चिंता है। इस उपन्यास का कोई भी चरित्र राष्ट्रवाद की किसी महत या वायवीय आकांक्षा के वशीभूत होकर आजादी की लड़ाई में नहीं कूदता; उनकी मुश्किलें, मजबूरियाँ, महत्वाकांक्षाएँ और सपने सब कुछ वास्तविक हैं। उपन्यास का नायक धनपुर नास्तिक है। वह भारत माँ की बलिवेदी पर कुर्बान होने के लिए आजादी के संघर्ष में नहीं उतरा था। उसके पास आजाद भारत के ठोस सपने थे। उसी के शब्दों में- "हमने नगाँव में कलङ नदी के किनारे एक घर बनाने की बात सोची है। जमीन भी देख ली है। अमला पट्टी के पार सड़क की बगल में ही कलङ तट से एक फ़र्लांग दूर रायसाहब की जमीन है। रायसाहब मान गये तो थोड़ी जमीन उन्हीं से लेकर एक घर बनवाऊंगा। तरह-तरह के फ़ूल-फ़ूल के पौधे लगाऊँगा। एक बड़ा-सा पोखर खुदवाकर मछली पालूँगा। ...पूरब की ओर एक अतिथिशाला बनवाऊँगा। वह चार परिवार के टिकने लायक होगी। ...रसोईघर सबके लिए एक ही रहेगी। वहाँ जात-पाँत का भेदभाव नहीं चलेगा। सबके लिए एक ही हाँड़ी चढ़ेगी।"(वही,पृ.सं.-११६)

बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य स्पष्ट राजनीतिक समझ के रचनाकार हैं, 'मृत्यंजय' उनकी उस राजनीतिक पक्षधरता का प्रमाणिक दस्तावेज है। 'मृत्यंजय' के साथ-साथ भट्टाचार्यजी के अधिकांश उपन्यास किसी-न-किसी जनक्रांति को केन्द्र में रखकर लिखे गये हैं। इन रचनाओं के अधिकांश चरित्र इतिहास की किताबों में खो गये गुमनाम लोग हैं, लेकिन उन लोगों के संघर्ष के हालात और सवाल आज भी विद्यमान हैं। भट्टाचार्यजी अपनी रचनाओं के माध्यम से बार-बार उन सवालों से मुठभेड़ करते हैं और हमें भी उसके लिये उकसाते हैं।

'मृत्युंजय' की हर पंक्ति हमसे यह पूछती है कि हमारे पूर्वजों ने जिन कामनाओं और सपनों के लिए जान दी थी क्या वे सब पूरी हुईं! क्या रायसाहब ने आजादी मिलने के बाद जिंदा बच गये धनपुरों को अपने सपनों का घर बनाने के लिये जमीन दी? और यदि नहीं दी तो क्या भारत को वास्तविक आजादी मिली है? क्या यह आजादी अधूरी नहीं है?

सामाजिक चिंताओं के क्रम में भट्टाचार्यजी ने स्त्री-पुरुष के जटिल संबंधों पर भी दृष्टिपात किया है। इनके लगभग सभी उपन्यासों में एक प्रेम त्रिकोण है जो स्त्री-पुरुष संबंधों की प्राचीन और प्रचलित मान्यताओं पर मर्यादित तरीके से सवाल खड़ा करता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी की तरह भट्टाचार्यजी भी प्रेम के उदात्त रुप का पोषण करने वाले रचनाकार हैं। 'चिनाकि सूति'(१९७१), 'वल्लरी'(१९७३), 'डाईनी'(१९७६) शीर्षक उपन्यासों में भट्टाचार्यजी ने स्त्री-पुरुष के प्रकृत-प्रेम को उदघाटित किया है। 'चिनाकि सूति' की नायिका अपर्णा का मानना है कि प्रकृत प्रेम वह है जो कामना और वासना से मुक्त और अशरीरी हो। वह विवाहित दासगुप्त से प्रेम करती है लेकिन उसे पाने की कभी कोशिश नहीं करती। दासगुप्त के प्रेम के लिए वह अपना सबकुछ न्यौछावर कर देती है, और अंत में भगवत-प्रेम की ओर उन्मुख हो जाती है। 'डाईनी' की नायिका सहज-सरल मना पदुमी प्रेम में चोट खाए अपूर्व को उस वक्त अपने प्रेम का सहारा देती है जब वह इस संसार से ही विरक्त होने की स्थिति में था। वह अपना सर्वस्व अपूर्व पर समर्पित कर देती है, जो अपूर्व के भीतर सच्चे प्रेम का स्वरुप प्रकट करता है। प्रेम के मामले में भट्टाचार्यजी की नायिकाएँ उनके नायकों की तुलना में ज्यादा मुखर और समर्पित हैं। इसका कारण बताते हुए 'चिनाकि सूति' में वे एक जगह लिखते हैं- "प्रेम ही नारी का प्राण है। पुरुष के लिए तो प्रेम महज मन का ख्याल है। जान तो वो किसी के लिए नहीं देना चाहता।"

आजाद भारतवर्ष को दो घटनाओं ने बेहद गहराई से प्रभावित किया- बंगलादेश के मुक्तिसंग्राम और आपातकाल ने। एक भारत राष्ट्र की मजबूती का प्रतीक बना, तो दूसरा भारतीय लोकतंत्र पर धब्बा। दोनों के केन्द्र में एक ही स्त्री थीं- इंदिरा गांधी। हिंदी साहित्य में इन दोनों घटनाओं पर किसी महत्त्वपूर्ण लेखक ने अपनी लेखनी नहीं चलाई है, जबकि आपातकाल का केन्द्रबिंदु हिंदीभाषी प्रदेश ही था। हिंदी साहित्य के साथ यह बड़ी मुश्किल रही है कि यह अपने समय और समाज की सीधी अभिव्यक्ति से सदैव कतराता रहा है। इसके बरक्स अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य अपने समकालीन समय और समाज के प्रति ज्यादा सचेत और मुखर है। बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने बंगलादेश के मुक्ति संग्राम पर 'कब्र आरु फ़ूल'(१९७३) और आपातकाल पर 'मुनिचूनिर पोहर'(१९७९) नामक उपन्यास लिखा। 'कब्र आरु फ़ूल' में पाकिस्तानी तानाशाह याहया खान के निर्देश पर पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा बंगलादेशी नागरिकों पर किये गये भयानक अत्याचारों का कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। अपना घर, परिवार और परिजन खो चुकी लड़की मेहरुन्निसा इस उपन्यास की नायिका

है जो अपने देश को इस आपदा मुक्त करने का प्रण लेती है और उसे पूरा कर ही अपना प्राण त्यागती है। भट्टाचार्यजी को इस घटना का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं था फ़िर भी इस उपन्यास में उनके द्वारा युद्ध की विभीषिका का खींचा गया चित्र बेहद मर्मस्पर्शी और प्रमाणिक है। इस संघर्ष में भारत द्वारा किये गये सहयोग और इसके पूर्वोत्तर भारत पर पड़ने वाले प्रभावों पर भी विचार किया गया है।

आपातकाल के दौरान असम के जोरहाट जिले के एक छोटे से गाँव, जो संभवत: भट्टाचार्यजी का अपना ही गाँव है, में उत्पन्न हलचलों को केन्द्र में रखकर 'मुनिचूनिर पोहर' की रचना की गयी है। उपन्यास का नायक गुवाहाटी विश्वविद्यालय में इतिहास का अध्यापक मीनधर है जो अपनी चाची का श्राद्ध कराने गाँव आता है और वहाँ की जड़ताओं से टकरा जाता है। मीनधर की पत्नी अलका राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं से भरी हुई नारी है जिसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य विधायक बनना है। गाँव से उसे बिल्कुल लगाव नहीं है, गाँव उसके लिए महज सत्ता तक पहुँचने का मार्ग है। अलका के भीतर इंदिरा गांधी का अक्स देखा जा सकता है। भट्टाचार्यजी के अन्य उपन्यासों की तरह इस उपन्यास में भी तमाम समाजिक जटिलताओं दृष्टिपात किया गया है।

सन १९७६ में भट्टाचार्यजी नें 'रांगा मेघ' अर्थात लाल बादल नाम से एक उपन्यास लिखा जिसमें उनकी राजनैतिक बेचैनी को साफ़-साफ़ महसूस किया जा सकता है। इस उपन्यास का नायक आनन्द भारतीय समाज में विद्यमान जड़ताओं और भारतीय राजनीति में जड़ जमा चुके भ्रष्टाचार के समूल नाश के लिए रक्तरंजित क्रांति की जरुरत महसूस करता है। उपन्यास का शीर्षक भी क्रांति का प्रतीक है। आनंद एक तरफ़ जहाँ राजनीति में उतरकर बड़े-बड़े नेताओं और अमीरों के अत्याचार से आम जनता को मुक्त कराता है वहीं व्यक्तिगत जीवन में भी छोटी जाति की एक लड़की कंचनमती से शादी कर धार्मिक जड़ताओं को चुनौती देता है। सन १९८२ में प्रकाशित रचना 'कालर हुमुनिया' असहयोग आन्दोलन के दौरान ऊपरी असम के चाय बगानों में अपने शोषण के खिलाफ़ विद्रोही हो गये श्रमिकों की कहानी है। चाय बगान के श्रमिक पहले कांग्रेसी नेताओं के क्रियाकलापों को लेकर आशंकित रहते थे इसलिए इस विद्रोह का फ़ायदा उठाते हुए कांग्रेसी नेताओं ने इन श्रमिकों को अपने पक्ष में कर लिया। दरअसल यह रचना विद्रोही गतिविधियों के लिए बिल्कुल अभेद्य माने जाने वाले चाय बगानों में स्वाधीनता संघर्ष की आग के फ़ैल जाने की कहानी है, जो भट्टाचार्यजी के बाल्यजीवन के अनुभवों की साहित्यिक परिणति है। इसमें विद्रोही हो गये श्रमिकों पर किये गये अमानुषिक अत्याचारों और सुंदर श्रमिक स्त्रियों के निरंतर चलने वाले शारीरिक शोषण के चित्र भी हैं।

सन १९७८ में भट्टाचार्यजी का 'पाखी घोड़ा' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास द्वितीय विश्वयुद्ध से लेकर स्वाधीनता आन्दोलन की पूर्वसंध्या तक असमिया समाज में हो रहे क्रमिक बदलावों पर

केंद्रित है। भट्टाचार्यजी के अधिकांश उपन्यास ग्रामीण जीवन पर केंद्रित हैं, लेकिन इस उपन्यास की पूरी कथा गुवाहाटी में रहने वाले शिक्षित समुदायों को केन्द्र में रखकर सृजित की गयी है। युद्ध की विभीषिका, मुस्लिम लीग द्वारा भारत विभाजन की कोशिश और आजाद भारत के भावी स्वरुप पर उपन्यास के शिक्षित समुदायों में हो रहे विचार-विमर्श को लेखक ने खुले मन से प्रस्तुत किया है जिससे तत्कालीन भारत के मानस की बेचैनी का पता चलता है। वास्तव में यदि बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य के चार उपन्यासों 'इयारुइंगम', 'प्रतिपद', 'मृत्यंजय' और 'पाखी घोड़ा' को एक साथ पढ़ा जाय तो आजादी के ठीक पहले संपूर्ण भारत और खासकर पूर्वोत्तर भारत, जिन मानसिक ऊहापोहों, भावनात्मक उबालों, सामाजिक उथल-पुथलों, वैचारिक संकटों और राजनैतिक बेचैनियों के बीच से गुजर रहा था उसे आसानी से महसूस किया जा सकता है। आज के पूर्वोत्तर भारत की उलझनों को समझने के लिए भी उस दौर को समझना आवश्यक है, ये उपन्यास इसमें हमारी मदद करते हैं।

सन १९८७ में बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का 'चतुरंग' नाम का एक उपन्यास प्रकाशित हुआ जो अलग-अलग विषयों पर केंद्रित उनके चार उपन्यासों 'भारती', 'टोबो अरु इडा', 'परिव्राजक' और 'एति निशा' का संकलन है। इन चारों उपन्यासों की कथा, प्रसंग, शिल्प और विषय भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन चेतना और वैचारिक नजरिये के आधार पर इनमें काफ़ी समानतायें हैं। 'भारती' सन साठ में सारे भारत में हो रहे भाषायी आंदोलन पर केंद्रित है। इसमें उपन्यास का नायक विपुल कहता है कि ''असमिया भाषा सरकारी भाषा हो लेकिन हिंसा से नहीं और लोगों को मारकर नहीं।'' असम में भाषायी आन्दोलन का स्वरुप दक्षिण भारत से इस मामले में अलग रहा है कि यहाँ असमिया भाषा की सीधी लड़ाई हिंदी से न होकर बंगला से थी। इसीलिए उपन्यास के नायक विपुल और उसकी बंगाली प्रेमिका भारती का मिलन प्रतीकात्मक रुप से इन दो भाषाओं का भी मिलन है। 'एति निशा' भी भाषायी आन्दोलन पर ही केन्द्रित है जिसमें भाषा आन्दोलन में बेहद सक्रिय एक युवक से उसका पिता कहता है कि, "हमें असमिया भाषा के साथ-साथ एक मुट्ठी चावल भी चाहिए।'' उपन्यास भाषा आन्दोलन के दौरान लगे कर्फ़्यू की अंतिम रात की घटना पर आधारित है। इसमें बेहद साहस के साथ भट्टाचार्यजी ने भाषा को लेकर हो रहे आन्दोलनों की हकीकत को दिखाया है। असमिया भाषा के लिए मर-मिटने को तैयार असमिया युवाओं की श्रमविमुखता और नामघरों के प्रति उपेक्षा को चित्रित कर उन युवाओं के साथ-साथ इस आन्दोलन के भीतर के खोखलेपन को भी उन्होंने उजागर किया है। अपनी भाषायी नीति को जाहिर करते हुए इस उपन्यास में एक जगह वे लिखते हैं, "सरकारी शिक्षा नीति है आंचलिक भाषाओं को उच्च शिक्षा का माध्यम करना। असमिया यहाँ की आंचलिक भाषा है इसलिए इसे असम की राजकीय भाषा बनाने में कोई परेशानी नहीं। बंगाली भाषा उच्च शिक्षा के लिए उचित नहीं है। एक राज्य की छोटी-बड़ी सभी भाषाओं को

शिक्षा का माध्यम बनाना असुविधाजनक है ...प्रशासन एवं शिक्षा के लिए यदि एक भाषा नहीं होगी तो सब कुछ विश्रृंखल हो जाएगा।"

'टोबो अरु इड़ा' भट्टाचार्यजी का एक शिल्पगत प्रयोग है जिसमें पुरुष चिंपैजी टोबो और उसकी मादा प्रेमिका इड़ा के प्रेम, शोषण और बलिदान के द्वारा सांकेतिक रुप से मानवीय समाजों में सदियों से चले आ रहे आर्थिक-सामाजिक शोषण को कटघरे में खड़ा किया गया है। 'परिव्राजक' रुस भ्रमण के लिए गये एक अध्यापक चिदानन्द फ़ूकन के अनुभवों का वृतान्त है जो डायरी शैली में लिखा गया है। उपन्यास में अध्यापक फ़ूकन और उनके रुसी गाइड मेटेक्स के बीच दोनों देशों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मसलों पर हुई बातचीत का विस्तृत व्यौरा है।

सन १९९७ में भट्टाचार्यजी का देहांत हो गया। इसके पहले मुख्य रुप से उन्होंने इन्हीं उपन्यासों की रचना की, लेकिन इसके अलावा उन्होंने बड़े पैमाने पर वैचारिक आलेख और कुछ कवितायें भी लिखी हैं। भट्टाचार्यजी का समस्त रचना-संसार समग्र मानवता के प्रति उनके असीम स्नेह की ही रचनात्मक परिणतियाँ हैं। इनकी रचनाएँ जनता के प्रति इनकी गहरी निष्ठा को साफ़-साफ़ प्रकट करती हैं। इनके लिए हर समस्या का समाधान जनसंघर्ष है। इनके अधिकांश उपन्यासों के नायक आमजन हैं जो मनुष्यता की नयी परिभाषा गढ़ते नजर आते हैं। आमजन के प्रति उनकी अतिरेकवादी निष्ठा का आलम यह है कि उनके उपन्यासों में खल पात्रों की उपस्थिति नहीं के बराबर है। इनके सत चरित्र तो बेहद सजीव हैं लेकिन खल चरित्र महज सांकेतिक हैं या पर्दे के पीछे। संपूर्ण 'मृत्युंजय' उपन्यास में केवल एक खल चरित्र है इंसपेक्टर सैकिया। इसमें मिलिटरी या अंग्रेजों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों की कहीं भी सीधी अभिव्यक्ति नहीं है, केवल उसके दुष्परिणामों का जिक्र है। दरअसल भट्टाचार्यजी की रुचि समाज के वीभत्स चेहरे को दिखाने में कभी नहीं रही। वे उनका चित्रण महज रंगमंच के पर्दे की तरह करते हैं। उनका जोर तो उस पर्दे के आगे होने वाले दृश्यों पर रहा है। उनकी आस्था मानवीय संघर्षों पर ज्यादा रही है। वे भारतीय साहित्य के परम आशावादी लेखक हैं।

जनता के प्रति बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का लगाव महज वैचारिक नहीं था, यह भावना और संवेदना के स्तर पर था। इनके लेखन और कर्म में कभी विभेद नहीं रहा। ये जनता के विषय में लिखते रहे और जनता के साथ लड़ते भी रहे। इनके अधिकांश उपन्यास इनके व्यक्तिगत अनुभवों की उपज हैं। 'मृत्युंजय', 'इयारुइंगम', 'प्रतिपद', 'पाखी घोड़ा', 'आई' आदि उपन्यासों में अध्यापक का चरित्र है जो समाजवादी आदर्शों में रचा-बसा है और जनता को जागरूक करने के लिए लगातार प्रयासरत है, यह कोई और नहीं स्वयं भट्टाचार्यजी हैं। 'रामधेनु' नामक पत्रिका में लिखे वैचारिक आलेखों के माध्यम से इन्होंने पूर्वोत्तर भारत में आये हर संकट के लिये एक

दिशा निर्देशित की। अपने अनेक आलेखों में इन्होंने पूर्वोत्तर भारत में चलने वाले उग्रवादी संघर्षों के प्रति अपनी सहानुभूति दिखायी, लेकिन केवल इसलिए क्योंकि वे संघर्ष सामाजिक विषमता को खत्म करने के लिए हो रहे थे। तथापि बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य की अंतिम सहानुभूति प्रेम, भाईचारे और आम जनता के प्रति ही थी। जनता के प्रति गहरे लगाव से संबंधित एक घटना का जिक्र उनके मित्र रेसाङ केइसाङ ने किया है।

'उखरुल' में रहते हुए रिसाङ अक्सर भट्टाचार्यजी को चर्च में ले जाते थे। एक दिन वहाँ पादरी ने प्रवचन के दौरान बताया कि दुनिया के बहुत कम लोग स्वर्ग में जाते हैं कि क्योंकि वहाँ जाने के नियम बहुत कठोर हैं, दुनिया के अधिकांश लोग तो नरक में ही जाते हैं; केवल कुछ चुनिंदा लोग ही स्वर्ग में जाते हैं। चर्च से बाहर निकलते ही भट्टाचार्यजी ने रिसाङजी से कहा कि मैंने तय किया है कि मैं स्वर्ग नहीं, बल्कि नरक जाऊँगा; क्योंकि एक सच्चा समाजवादी होने के नाते हमें आम जनता के साथ होना चाहिए, खास जनता के साथ नहीं। जनता के प्रति उनके इस अडिग लगाव के कारण ही संत विनोबा भावे उन्हें बीरेन्द्र की जगह धीरेन्द्र बुलाते थे। व्यक्तिगत जीवन में भी वे बेहद सहज और जीवंत थे। गुवाहाटी विश्वविद्यालय में रीडर होने के बावजूद आजीवन उनके पास दो ही सेट कपड़ा रहा। उनकी पत्नी के पास भी दो ही सेट साड़ी थी। जाड़े के दिनों में वे अक्सर मिलिटिरी का ओवरकोट पहनते थे जिसे उन्होंने बाजार से सेकेंड़हैंड में खरीदा था। पूर्वोत्तर के प्रमुख लेखक देवराजजी के अनुसार 'सामने से वे हिंदी के दो रचनाकारों नर्मदेश्वर चतुर्वेदी और भवानी प्रसाद मिश्र के मिश्रित रुप नजर आते थे।'

बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य जिस समय युवा हो रहे थे वह वक्त भारतीय एवं वैश्विक दृश्य-पटल पर काफ़ी उथल-पुथल भरा था। द्वितीय विश्वयुद्ध, भारत छोड़ो आन्दोलन, नाविक विद्रोह, भारतीय आजादी, आजादी के बाद मार्क्सवादियों का सरकारी दमन और फ़िर चीनी आक्रमण- ये सब ऐसी घटनायें थीं जिन्होंने अपने वक्त के साथ गहरी संपृक्ति रखने वाले भट्टाचार्यजी के मस्तिष्क को काफ़ी प्रभावित किया। इनकी अधिकांश रचनायें इन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं की पृष्टभूमि में रचित हुई हैं, लेकिन ये घटनायें उनके लिए इतिहास नही, बल्कि वर्तमान थीं। इसलिए उसको देखने-समझने और चित्रित करने का बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का तरीका बिल्कुल अपना है। उनके यहाँ इतिहास महज तिथियों या घटनाओं के व्यौरे के रुप में नहीं है, बल्कि उसका जीवंत अस्तित्व है। इन रचनाओं में ऐतिहासिक घटनायें महज अपनी आभासिक सत्ता प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि पूर्वोत्तर भारत की आम जनता पर पड़ने वाले वास्तविक प्रभावों का सजीव वर्णन प्रस्तुत करती हैं। वृन्दावन लाल वर्मा की तरह न तो भट्टाचार्यजी ऐतिहासिक महापुरुषों को अपनी कथा का नायक बनाते हैं और न ही अपने समय के नायकों की आभा में खोते हैं। उनके असली नायक तो वो आम जन ही है जिसके दम पर इतिहास की इन तमाम घटनाओं ने आकार लिया, भले ही इतिहास की किसी भी पुस्तक में उनका नाम न हो। 'मृत्युंजय' हो या

'इयारुयंगम', 'प्रतिपद' हो या 'राजपथे रींगियाइ'- इनमें से किसी भी उपन्यास का नायक या कोई चरित्र ऎतिहासिक पुरुष नहीं है, लेकिन इसमें उल्लिखित पात्र इतिहास की पुस्तकों में विद्यमान किसी भी व्यक्ति की तुलना में अपने समय की ऎतिहासिक घटनाओं की दशा और दिशा को निर्धारित और निर्देशित करने में ज्यादा बड़ी भूमिका निभा चुके हैं। सच्चे समाजवादी बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य की रचनाएँ उन आमजनों को श्रद्धांजलि भी है और सिर के बल खड़ी इतिहास की पुस्तकों को पैर के बल खड़ी करने की एक कोशिश भी हैं। यह नायकों की नजर से इतिहास को देखने के बरक्स जनता की नजर से इतिहास को देखने एक मुकम्मल प्रयास है। भट्टाचार्यजी के उपन्यास सन १९४२ से लेकर १९७७ तक के पूर्वोत्तर भारत की एक भरी-पूरी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। उनकी रचनाओं का क्रमवार अध्ययन भारत के निर्माण में पूर्वोत्तर भारत की भूमिका का हमें सही परिचय देता है और हमारे तमाम भ्रमों का निवारण करता है। ऎसा संभवत: भारतीय साहित्य के किसी भी अन्य रचनाकार के बारे में नहीं कहा जा सकता है।

उत्तर आधुनिकता के दर्पण में 'मनोहर श्याम जोशी' के उपन्यास - एक विहंगावलोकन

डॉ. वी.जगन्नाध रेड्डी*

20 वीं सदी के उत्तरार्ध से न केवल समाज में बल्कि मानवजीवन एवं उस जीवन का दर्पण माने जाने वाले साहित्य के सभी क्षेत्रों में आधुनिक विचार एवं भावबोध का जन्म हुआ है। प्रकृति के नियमों के अनुरूप हर क्षेत्र में नये विचार एवं सोच पुरानी मूल्यों और भावनाओं के स्थान ग्रहण करके समस्त मानवजीवन को प्रभावित करना एक आम बात है। सदी के अंत तक आते-आते यह और जोर पकडते हुए साहित्यिक सृजन एवं आलोचना में एक प्रकार की क्रांति का कारक हो गया है। अपने आप में आधुनिकता एक निरंतर घारा है जो समाज एवं मानव जीवन में अनेक नये मोड लाती है। आधुनिकता ने मानव में भय, संत्रास, द्वेष, नैराश्य, जलन, अनिश्चिति एवं अनैतिकता आदि लक्षणें को बढ़ावा दिया है। सदी के अंत तक यही आधुनिकता और तीव्र गति से मानव के सोच और विचार में अनेक बदलाव लायी है जिनको आलोचकों ने उत्तरआधुनिता के परिणाम मानते है। इन परिणामों के रूप में असंतुलित मनोवृत्ति, दिशाहीनता, भावहीनता, निष्क्रियता, निर्लिप्तता, विद्रूपता, विक्षिप्तता, परवशता आदि लक्षणों को देख सकते है।

उत्तर आधुनिकता अपने आप में विरोधाभासों का संगम है। आर्लनार्ड टॉयनबी पहले पहल इस की कल्पना को 1850 और 1857 के बीच आधुनिक युग की समाप्ति ओर उत्तर आधुनिक युग के प्रारंभ को माना है। साहित्य के संदर्भ में फ्रांसीसी दार्शनिक ल्योटार ने 1979 में उत्तरआधुनिक शब्द का प्रयोग किया है। आलोचकों के अनुसार उत्तरआधुनिकता दर्शन से अधिक एक प्रवृत्ति है जिसमें लक्ष्यों, नियमों और मूल्यों के बारे में सरल रेखामार्ग पर विचार नहीं होता है। 'टॉयनबी' के अनुसार उत्तर आधुनिकता की शुरूआत तब होता है जब लोग अपने जीवन, विचारों और भावनाओं में तार्किकता एवं संगति को त्याग करके अतार्किकता और असंगतियों को अपना लेते है। यह व्यक्ति की स्वतंत्रता को सर्वोपरि मानकर चलनेवाली प्रवृत्ति है भलें हीं व्यक्ति के जीवन में कितने भी असंगतियाँ हों। अर्थात नैतिकता और परंपरा को नकारते हुए समाज में नये मूल्यों की ओर इशारा करती है। इसके अनुसार मनुष्य संपूर्ण रूप से स्वायत्त, उच्च एवं श्रेष्ठ है। वह अपने मन कामुकता के अलावा और किसी के लिए जिम्मेदार नहीं हैं और किसी पर अश्रित भी नहीं। उत्तर आधुनिक साहित्य के संदर्भ में देखें तो उसके लिए कोई पूर्वनिर्धारित नियम या शैली नहीं होने के बावजूद पाठकों में रूचि जगाने और प्रभावित करने में कोई लोप नहीं है। समकालीन साहित्यिक जगत में इस प्रकार एक नवीनशैली रचनाकार के रूप में

विख्यात है श्री मनोहर श्याम जोशीजी है। उनकी रचनाओं में सृजनात्मकता का बहुआयामी एवं बहुरंगीन चित्रण झलकती हुई दिखई पडती है। भलें हीं 1951 से वे अपने लेखन काम आरंभ करने पर भी 1980 में उनके पहले उपन्यास 'कुरू कुरू स्वाहा' के प्रकाशन के द्वारा ही वे साहित्य जगत में मशहूर हुए हैं । इस उपन्यास के द्वारा जोशी जी ने आज के समाज एवं जीवन के वास्तविकता और कल्पनात्मक भ्रांतियों का रंगीन चित्रण यथार्थ धरातल पर किया है। यह उपन्यास महानगरीय व्यस्तता और भागदौड की जिंदगी में चाहे अनचाहे अपने आप में विभाजित एवं खंडित व्यक्तित्व से लडने वाले व्यक्ति की कहानी है। आज रोजी रोटी की होड में भटकाव और नैराश्य से त्रस्त आदमी शहरीकरण वैश्वीकरण से संक्रमित संस्कृति से प्रभावित होकर जीवन की मान्यताओं को भ्रमित, अनिश्चित, कुंठित और क्षणिक मानकर चलने के लिए विवश है। भोगवादी प्रवृत्ति ब□.ने के कारण नैतिकता और आदर्शों में ह्रास हो रहा है। इस कारण से आज के जीवन में किसी का महत्व बचा नहीं है। जोशीजी एक पात्र के माध्यम से इसी विषय को इस प्रकार व्यक्त करते है- ''इस असार संसार में जात-जात और भाँत- भाँत पगले उपलब्द है। कुछ उसका शरीर चाहते है, कुछ हृदय, कुछ मस्तिष्क्। कुछ को अर्थ दरकार है, कुछ को काम, कुछ को धर्म, कुछ को मोक्ष सर्वत्र अपूर्णता है। इससे ले, उसको दे-यही जीवन का धर्म था उसका।'' आधुनिक जीवन में सत्य अनेक रूप बदलकर व्यक्त होने से व्यक्ति में उस सत्य के प्रति ही संदेह उत्पन्न हो रहा है। समाज में हर व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए झूठ का सहारा लेने से वास्तविकता और भ्रम में भेद करना कठिन हो रहा है। जोशीजी इस उपन्यास के माध्यम से आज समाज में परिलक्षित अनेक वाद जेसे उपनिवेशवाद पूंजीवाद, परंपरावाद, भोगवाद के बीच में व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को खंडित होने से बचाना और 'मुझे सहना है' से 'मुझे लडना है' का संदेश देते हैं।

उनका दूसरा उपन्यास है ''कसप'' जिसमें जीवन के प्रत्येक दर्शन पर अपनी टिप्पण प्रस्तुत करते हुए एक कालातीत संधिग्ध सत्य का उद्घोषण किया है। इस उपन्यास के द्वारा मानवजीवन में निविडतम सार्वभौमिक प्रेम के भिन्न रूपों पर प्रकाश डालने के लिए लेखक ने कोशिश किया है। साथ ही साथ प्रेम संबंधों के बनने और बिगडने के पीछे के सामाजिक कारणों की तलाशने का प्रयास भी किया है। इस उपन्यास के द्वारा वे इस सच्चाई को समाज के सामने प्रकट करने के लिए कोशिश किया है कि पुरूष को अपनी वास्तविक आत्म-शक्ति का परिचय कराने वाली नारी ही प्रेम का एक प्रेरणा स्त्रोत है। आधुनिक व्यक्ति अपनी महत्वकांक्षाओं की पूर्ति के लिए नैतिकता के नये प्रमाणों को समाज में स्थापित करने के लिए कोशिश करता है। आज व्यक्ति पश्चिम से प्रभावित होकर अपने आप में केन्द्रित होकर एक प्रकार से एकायामी जीवन बिताने के लिए तत्पर हो रहा है जिसके जीवन में विचार भावनाएँ आदर्श मूल्य आदि का कोई स्थान न बचा है। 'गुलनार नामक पात्र के द्वारा लेखक इसी सच्चाई को पाठक जगत के सामने रखते हैं। वह कहती है ''तुम जो

चाहो करो,सब ठीक है तब तक, जब तक यह न भूलों कि तुम्हारी पहली और आखिरी प्रतिबद्धता अपनी प्रतिभा से है। तुम किसी के बेटे नहीं हो, किसी के बाप नहीं,किसी के पति नहीं,किसी के प्रेमी नहीं, तुम केवल तुम हो और उतने भर हो जितना तुम अपने होने के नाते करते हो। ''इस प्रकार आज के समाज में व्यक्ति की आकांक्षाओं, महत्वकांक्षाओं नीतियों, रीतियों के माध्यम से बृहत सामाजिक जीवन का बहुरंगी एवं बहुआयामी चित्रण करना जोशीजी का लक्ष्य है।

उनका तीसरा उपन्यास है ''ट-टा प्रोफेसर'' जो 1995 में प्रकाशित है। इस उपन्यास के द्वारा जोशीजी मानवजीवन की विडंबना को अत्यंत करूणा के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जीवन अनिश्चित है और उस अनिश्चित जीवन में युवावर्ग निर्णय अनिर्णय की स्थिति में जल्दबाजी में गलत निर्णय लेकर जीवन के साथ खिलवाड करते हुए अपने पैरों पर ही कुल्हांडी मार लेते है। इसी सच्चाई को वे 'यतीश' पात्र के द्वारा चित्रित करते हुए युवापीढी की मानसिक दुर्बलताओं और पलायन प्रवृत्ति की ओर इशारा किया है।

जोशीजी का चैथा उपन्यास है 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी'' जिसमें लेखक आधुनिकता के सभी लक्षणों को तोडते हुए उत्तरआधुनिक की स्वैराचार को यथर्थ धरातल पर पस्तुति हुई है। मानवीय संवेदनाओं के इस लुप्त युग में 'हरिया' जैसे मेंटल्ली रिटार्टेड या मूढ व्यक्ति को मुख्य पात्र के रूप में चित्रित करके निरर्थकता से सार्थकता की ओर चलनेवाले व्यक्ति का रूपायन किया है। अर्थात मूर्खता से स्थितप्रज्ञता की ओर जाने के लिए आधुनिक व्यक्ति की प्रस्थान का चित्रण किया है। इस उपन्यास के द्वारा लेखक हरिया जैसे नपंुसक व्यक्ति के चित्रण करके उसके बिरादरी की नपंुसकता और अयोग्यता पर करारा प्रहार किया है। उसकी नपुंसकता के माध्यम से उसकी बिरादरी की खोई हुई अस्तित्व या अस्मिता की खोज कराने का प्रयास किया है।

जोशीजी का पाँचवाँ उपन्यास है 'हमजाद'' जिसमें लेखक पूंजीवाद और उपभोक्तावाद की विभीषिका का घिनौना चित्रण प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास पूंजीवाद और भोगवाद से प्रभावित व्यक्तियों की कहानी है। आज के समाज में अपने स्वार्थसिद्धी के लिए नैतिकता को तिलांजली देनेवाले टी.के जैसे मानव रूपी शैतान का वर्णन किया है जो समस्त मानवीय मूल्यों को नकारते हुए सत्ता ओर पैसों का एक घिनौना खेल खेलता है। उसके लिए पत्नी, बेटी, माँ, पौत्री यहाँ तक ही पुरूष भी अपनी वहशी हवश की पूर्ती के साधन हैं। वह बोलता है-'' भले ही मेरी सेक्स की भूख के लिए अब पाँच सितारा खुराक हाजिर रहती है, मैं इस बात को भुला नहीं सकता कि तिलक की वह टिक्कड है जिससे मैंने पहले-पहल अपनी भूख मिटायी थी। यह मेरा हमजाद है। ''समाज में रहनेवाले ऐसे क्रूर व्यक्तियों के कारण उनके शोषण के शिकार लोगों को चाहे अनचाहे पराधीन होकर जानवरों की तरह जीवन बिताना पडता है। यह उद्धरण इसी सत्य का प्रतीक है। ''तो मै टी.के. नारकियानी के दिये

नरक में उसी तरह इत्मीनान से रहने लगा जिस तरह भैंस कीचड में रहती है। उस नरक में उसकी बिखरायी गंदगी को वैसे ही मजे से खाने लगा हूं जैसे सुअर खाता है।" इस प्रकार उपन्यास के तीन पुरूष पात्र नारी को अपने स्वार्थ के लिए कठपुतली के रूप में नचाते है कभी आर्थिक लालच देकर कभी विवाह का नाम बताकर। मैना नामक एक नारी के माँ-बाप से टी.के. का यह वार्तालाप इसी का सूचक है। "आप अपनी आत्मशांति के लिए अपनी हवेली को मेरे पास गिरवी रख जाइए। मै मेना से शादी करने का फैसला कर चुका हूं इसलिए गिरवी रखदिये जाने के बावजूद हवेली आप लोगों की ही रहेगी।" इस प्रकार उत्तर आधुनिक समाज में लुप्त हो रहे मूल्यहीन जीवन के समस्त पहलुओं पर तीव्र प्रहार करते हुए जोशीजी अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठक जगत को न केवल सचेत किए है और उन स्वार्थी लोगों के विकृत रूप को बेनकाब करने में भी सफल हुए है।

जोशीजी अपने "कयाप" उपन्यास में मार्क्सवादी दृष्टि से समाज में व्याप्त विषमताओं विदूरपताओं विसंगतियों और विध्वंसों के प्रति जनता को सचेत किया है। इसी प्रकार "उत्तराधिकारिणी" नामक उपन्यास के द्वारा एक रईस बाप, एक मूर्ख प्रेमिका ओर एक निर्दोष बेटी की कहानी को चित्रित करके उत्तरआधुनिक समाज के समस्त पहलुओं के बारे में पाठकों में एक नयी भावबोध जगाने के साथ साथ उनकी सोच में एक सक्रिय एवं संपूर्ण परिवर्तन लाने का सफल प्रयास किए है।

संदर्भ ग्रंथ।

1. कुरू कुरू स्वाहा-मनोहर श्याम जोशी-पृष्ट 87

2. कसप- मनोहर श्याम जोशी-पृष्ट 174

3. हमजाद- मनोहर श्याम जोशी-पृष्ट 110

4. हमजाद-मनोहर श्याम जोशी-पृष्ट 124

5. हमजाद-मनोहर श्याम जोशी-पृष्ट 90

नामदेव धसाल की कविताओं का अनुवाद - मिलिंद पाटिल

दो रास्ते

(मूल मराठी 'दोन रस्ते')

दो रास्ते जीवन के

जीवन दो रास्तों का

जिनका कभी भी नहीं हो सकता

विलीनीकरण

कोई भी झाड़फूंक करें

या जादू की छड़ी घुमाएँ

यह दो रास्ते विरोध में रहते है परस्पर

उन पर नियम लागू होता है वर्गसंघर्ष का

एक रास्ता भुखमरी और लाचारी का, समझौते का

और स्वयं को बेचने का

दूसरा रास्ता विद्रोह का, सीधे-सीधे सत्ता पर जाने का

विश्व को बदलने का और स्वयं को बदलने का.....!!!!!!!

वाहरू सोनवने की मराठी कविताओं का अनुवाद – मिलिंद पाटिल

तब

(मूल मराठी 'तेव्हा')

ऐसा क्यों हैं बाबा !

किसी ने पूछा तो

गाल लाल हो जाते हैं

नहीं तो जेल में भेजकर ठूंस देते है

वे कुछ भी करें

हमें एक शब्द भी उच्चारणा गलत है

उनके ख़िलाफ़

पटता नहीं तो, अनदेखा करना ही अच्छा

देख लिया होगा उसे भूलना ही ठीक है

चुपचाप

कुछ भी सहना

तभी, अभी का ज़माना

अच्छा कहता है

गरीबों को .....!!!!

(मूल भिलोरी कविता का मराठी अनुवाद – मराठी 'तेव्हा')

कवि – वाहरू सोनवने

गोधड – सुगावा प्रकाशन, पुणे

चिलम

(मूल मराठी 'चिलिम')

चिलम का धुआँ

आकाश की ओर छोड़कर

हाथ पैर हिलानेवाला

भूखा जीव

बहुत ही समय

लगातार

देखता रहता, चिलम के धुएँ की ओर

निराश होकर

और

दूसरा कश छोड़ते हुए

वैसे उसका यही काम है

जैसा की.....!!!!!!!!

मूल भिलोरी 'चिलम' का मराठी अनुवाद – मराठी 'चिलीम'

स्त्री

(मूल मराठी – 'स्त्री')

जवानी में वेश्या

बुढापे में डायन

ऐसा ही लोग कहते हैं

लोगों का क्या

लोग कुछ भी बोलते हैं

एक ऐसी वस्तु

उसे रास्ते में, बीहड़ों में

मिले वहाँ रोकना

मन में आया तो बाहों में लेना

मज़ा ले लिए तो छोड़ देना

इस कान की खबर उस कान को नहीं

नई साड़ी....., नई बहू

ससुर के पैर छूती है

पुरानी होकर फट जाती है

साड़ी के साथ-साथ

और बाद में

फटे हाल जीना

जिंदगी भर.....!!!!

खून के बुत

(मूल मराठी – 'रक्ताचे पुतळे')

ऊँचा होगा मेरा मकान

उस मकान से

टहलने को टुरींग

सुंदर बाग

शान से रहकर, सम्मान से जीना

ऐश ही ऐश...., उनसे ज्यादा .....

सपना देखता हूँ मैं...

मन ही मन

परंतु

आखों के सामने झोपड़ी

और फटे कपड़े

ठंड राख़ का चूल्हा

वो फटेहाल जीवन

पत्थर को भी ग़ुस्सा देनेवाला

ऐसा वह बलात्कार

दुख को भी चुभन

होश उड़ जाता है

ज़बरदस्त ग़ुस्सा, चिढ़

की गर्दन मरोड़ लूँ

उलट-पुलट कर दूँ

ये करूँ, वो करूँ

पसीना आता है

फिर भी

मन का डरपोक वैसा ही

और पैर पीछे हट जाते हैं

कुछ औलादे ऐसी भी होती हैं

तब

खून के बुत

चलने लगते हैं.....

बोलने लगते हैं.....!!!!!!

पंजाबी की चुनिंदा प्रेम कविताओं का हिंदी अनुवाद
अनुवादक – हरप्रीत कौर

शो-केस

लड़की कांच से बनी हुई थी
और लड़का मांस का
लड़की ने लड़के की और देखा
और कांच ने मांस को कहा
मुझे सालम का सालम निगल जा
लड़के ने अपनी बड़ी आंत के छोटे हाजमे
के बारे में सोचा

लड़की फिर बोली
डरपोक
कम से कम मुझे शो केस से मुक्त तो कर
सड़क पर रखकर तोड़ दे
पांव ने चमड़ी के नाजुक होने के बारे में सोचा

लड़की फिर बोली
यदि सोचना ही है तो घर जाकर सोच
सड़क पर तुम्हारा क्या काम?
मैं तो शो केस में भी बोलती रहूंगी
कांच की लड़की शो केस में बोलती रही
लड़का मांस का सड़क पर खड़ा सोचता रहा.

मनजीत टिवाणा

सीमांत के आर-पार

छप्पर किनारे
आक ककड़ी में जब
वह पंखों सहित जन्मी
हवा ने हंसकर कहा था
मुझे पता है तू मेरी ही पीठ पर सवार होगी
माँ को आँगन लीपते देख
पता नहीं उसने किससे कहा था
मुझे तो अभी आसमान लीपना है

सूरज ने जब उसका पहला खत पढ़ा
चांद उसे मिलने के लिए
सारी रात बादलों से घुलता रहा
तारे उसे अपने पाश में
लपेटे रखने के लिए
बार-बार टूटते रहे
इसी खींचतान के समय में
नील-आर्मस्टांग के नाम
लिखा उसका एक खत मिलता है
मून ईज नॉट माई लिमिट.

जसवीर

ऐ मुहब्बत

ऐ मुहब्बत
मैं तेरे पास से
मायूस होकर नहीं लौटना चाहती
नहीं चाहती
कि तेरा वह बुलंद रूतबा
जो मैंने देखा था
अपने मन में कभी
नीचा हो जाए कभी
नीचा हो जाए

इतना नीचा

कि तेरा पवित्र नाम
मेरी जुबान से फिसलकर
नीचे गिर जाए
फिर तेरी कसक
मुझे उमर भर तड़पाए

ऐ मुहब्बत
मेरा मान रख
तू इस तरह कसकर मुझे गले लगा
कि मेरा दम निकल जाए
और कोई जान न सके
कि तू मेरी जिंदगी है या मुक्ति

ऐ मुहब्बत
मैं तेरे पास से
मायूस हो कर नहीं लौटना चाहती
मुझे जज्ब कर ले
अपने आप में.

सुखविन्द्र अमृत

तू मुझे प्यार न करना

जो प्यार करते हैं
फूल बनते हैं या तारा
फूल महक बांटते हैं
हवाओं में घुल जाते हैं
सूख जाते हैं और फिर खत्म हो जाते हैं

जो प्यार करते हैं
तारा बनकर आसमान में चढ़ जाते हैं
मैं नहीं चाहती
तू मुझे प्यार करे
प्यार करने वाले
फूल बनते हैं या तारा
पास नहीं रहते
न न तू मुझे प्यार न करना.

वनीता

जब वह

जब वह दोस्त बना
तो कितना अच्छा था
जब वह महबूब बना
कितना सुंदर वह प्यारा था
जब वह पति बना
तो सब बदल गया
वह हिटलर बन गया
और वह उसके कंसन्ट्रेशन कैंप में
एक यहूदी स्त्री.

शशि समुन्द्रा

इंतजार

बहुत समय से खड़ा
इंतजार में हूँ
तू दरवाजा खोले
और कहे
तुझे पता है, न...
मैं क्या कहना चाहती हूं .

सुखपाल

सेलेबस के बाहर की बातें

अम्मी ! आज यह खत लिखते हुए
मैं बहुत उदास हूँ
इतनी उदास कि मेरा यह हास्टल का कमरा
कमरा नहीं, कब्र लगता है
कापियां किताबें काले सांप सरीखी बन गई हैं
और इस कमरे में छोटी-सी खिड़की में से

सूरज छिपता नहीं
डूबता, मरता लगता है
और इस उदासी के आलम में
मां मेरी!
मुझे तेरी लोरियां याद आ रही हैं
घड़ों की पीठ पर सेवइयां बनाना
बेरी के बेर तोड़ना
मिट्टी गूंथ-गूंथकर साँझ के तारे बनाना
अडडा-टप्पा, पीच्चों-बकरी खेलना
हसना, कूदना, गीत गाना
और बीती रात तक तारों की छाया तलें
पीहर आई बुआ से बातें सुनना
बहुत कुछ है
जो मेरे अतीत में तो है
पर बहुत पीछे रह गया है
हास्टल के चैतरफा बहुत फूल खिले हैं
यहां बिजली के पंखें हैं

सारी रात लैम्पपोस्ट जलते हैं
बेअंत लड़कियां हैं फिल्मी गीत गाती.

रवींद्र भट्ठल

कुछ नहीं बदला

शहर बदलने से
कुछ भी तो
नहीं बदलता
न सुरमई सड़कों
की लंबाई
न दिन की
चिलचिलाती धूप
न रात का
खामोश शोर
न खिड़की से झांकता
आसमान का
गर्दिला टुकड़ा
न कांपती आवाज

में दिया गया
मां का आशीर्वाद!
बदलता है
तो शायद सिर्फ
महबूब का नाम! .

निरूपमा दत्त

*लेखकों और अनुवादकों के नाम और पते

1. विद्या चंदनखेड़े – पी-एच.डी. शोध छात्रा

अनुवाद अध्ययन विभाग, म.गा.अ.हिं.वि.वर्धा
vidyachandankhede@gmail.com

2. विशेष श्रीवास्तव - पी-एच.डी. शोध छात्र

अनुवाद अध्ययन विभाग, म.गा.अ.हिं.वि.वर्धा

3. शावेज़ ख़ान - पी-एच.डी. शोध छात्र

अनुवाद अध्ययन विभाग, म.गा.अ.हिं.वि.वर्धा

4. Yogesh Umale – Ph.D. Research Scholar,

Center for Applied Linguistics and Translation Studies, University of Hyderabad
Email - umaleyogesh1@gmail.com, Mobile - 08332905662

5. डॉ. मिलिंद पाटिल – यूजीसी पोस्ट डॉक्टरल फ़ेलो-

अनुवाद अध्ययन विभाग, अनुवाद एवं निर्वचन विद्यापीठ, म.गा.अ.हिं.वि.वर्धा

ई-मेल – drmilindpatil@hotmail.com, दूरभाष - 09860663288

6. डॉ बी बालाजी - अवर प्रबंधक (राजभाषा), बीडीएल, भानूर, मेदक- 502305
Balajib18@gmail.com, दूरभाष - 09293228460

7. अनुराधा पाण्डेय – 241 गंगा छात्रावास, जे. एन. यू, नई दिल्ली,

ई-मेल anu.pantran@gmail.com

8. डॉ. अमरेन्द्र त्रिपाठी - सहायक प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, राजीव गांधी विश्वविद्यालय, रोनो हिल्स
ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश ई-मेल - amarrgu@gmail.com

दूरभाष- 09436224976

9. डॉ.ई. विजय लक्ष्मी - मणिपुर विश्वविद्यालय, इम्फ़ाल (मणिपुर),

ई-मेल – velangbam@yahoo.com, दूरभाष – 09856138333

10. प्रो. देवराज – अनुवाद अध्ययन विभाग, अनुवाद एवं निर्वचन विद्यापीठ, म.गा.अ.हिं.वि.वर्धा

ई- मेल – dr4devraj@gmail.com, दूरभाष – 09665976661

11. कुमार मुकुल – मनोवेद त्रैमासिक पत्रिका के कार्यकारी संपादक

ई-मेल - kumarmukul07@gmail.com

12 . डॉ. हरप्रीत कौर - अनुवाद अध्ययन विभाग, अनुवाद एवं निर्वचन विद्यापीठ, म.गा.अ.हिं.वि.वर्धा

ई- मेल –dr.harpreetkaurr@gmail.com

13. डॉ. वी.जगन्नाध रेड्डी – अध्यक्ष – हिंदी विभाग, अन्नामलाई विश्वविद्यालय, अन्नामलाई नगर, तमिलनाडू

ई- मेल - vij72reddy@rediffmail.com, दूरभाष - 09442424331

सम्मतियाँ

Dear Milind,

I am pleased to acknowledge the initiative taken by the translation department which will go long way in achieving the academic excellence of translation community in India at large. More than that I appreciate VC's effort in contextualizing the situation of translation in Hindi language that was due from this department. I congratulate you all for such endeavor. Good luck.

2015-04-22 10:25 GMT+05:30 Patil Milind B <patilmilind23@rediffmail.com>:

Prof. Shailendra Kumar Singh
Head, Department of Linguistics
NEHU, Shillong

Principal Investigator, EILMT-Bodo

To, Date : 22-04-2015

Dr. Milind Ji,

Namaskar.

Congratulations for publishing E- Magazine `ANUSRIJAN`. I have read the first issue and it is very rich in respect of information relating to translation. I appreciate this effort. Please keep it continue.

Thanks for sending the issue.

(Dr. Ram Gopal Singh)

Professor, Department of Hindi,

Gujarat Vidyapith, Ahmedabad

2015-04-22 10:25 GMT+05:30 Patil Milind B <patilmilind23@rediffmail.com>: